॥८१७॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

मानस-रूखड़

जूनागढ़ (गुजरात)

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

|| **रामकथा** ||

मानस-रूखड़

मोरारिबापू

जूनागढ (गुजरात)

दिनांक : २७-०२-२०१६ से ०६-०३-२०१६

कथा-क्रमांक : ७९०

प्रकाशन :

जुलाई, २०१७

प्रकाशक

श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,

तलगाजरडा (गुजरात)

www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट

© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक

नीतिन वडगामा

nitin.vadgama@yahoo.com

हिन्दी अनुवाद

प्रो. ज्ञानसिंह चंदेल

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :

ramkathabook@gmail.com

+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स

स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

गिरनार की तपोभूमि और मोरारिबापू की भावभूमि जूनागढ (गुजरात) में दिनांक २७-०२-२०१६ से ०६-०३-२०१६ के दिनों में 'मानस-रूखड़' पर केन्द्रित रामकथा का बापू की व्यासपीठ से गान हुआ। सुविदित है कि अंबाजीधाम में नवरात्रि दरम्यान चौथे नवरात्रि के दिन बापू की कथा में 'रूखड़' का अवतरण हुआ था और बाद में तात्त्विक भूमिका स्वरूप बापू की कथा में बार-बार रूखड़ के दर्शन होते रहे हैं। जहां तमाम साधना पद्धतियों का समन्वय हुआ है ऐसे गिरनार की भक्तिसिक्त भूमि में आयोजित यह रामकथा तो संपूर्णरूप में रूखड़ को समर्पित हुई और नौ दिन व्यासपीठ के माध्यम से रूखड़ के विषय में बापू का सूक्ष्म और सर्वग्राही दर्शन व्यक्त हुआ।

'रूखड़' की अर्थछाया के संदर्भ में स्पष्टता करते हुए बापू ने आरंभ में ही कहा था कि 'रूखड़' का जो सामान्य और प्रचलित अर्थ है उस अर्थ में यह चर्चा नहीं है। जिसके रोम-रोम में भजन है, जिसने कभी मौन में, कभी गाकर, कभी बैठकर, कभी इधर-उधर देखकर, कभी आंसू के साथ, कभी आकाश को देखकर निरंतर हरि को भजा है, ऐसे रूखड़ के चर्चा की यह कथा है। यह रूखड़ अर्थात् एक अवस्था, साधना की सम्पन्नता, सत्य, प्रेम और करुणा से लबालब भरा हुआ कोई महापुरुष, कोई महातत्त्व; उसकी चर्चा करनी है।

'मानस-रूखड़' रामकथा के अंतर्गत बापू ने 'भगवद्गोमंडल' में दिए गये रूखड़ के अर्थ को या संस्कृत वाङ्मय में दी रूखड़ की परिभाषाओं को दर्शाते हुए रूखड़ का अर्थबोध कराया तो साथ ही साथ जिसका चरित्र कपास के पौधे जैसा है उस साधुचरित के गुण-लक्षणों का निर्देश कर रूखड़ का 'रामचरित मानस' के साथ अनुबंध भी रच दिया। 'रूखड़' यह कोई संज्ञा नहीं है परंतु एक अवस्था है, ऐसे सूत्रात्मक निवेदन के साथ बापू ने तलगाजरडी दृष्टि से रूखड़ का परिचय देते हुए कहा कि रूखड़ वो है जिसे साधना का बोझ नहीं है, जो प्रसन्नचित्त है, जो सरल-तरल जीवन जीता है, जिसके जमीन के सभी आकर्षण छुट गये हैं और गगनगढ़ में खेलने आया है, जिसको पृथ्वी की सीमित अवस्था नहीं रुचती, व्योम की विशालता पसंद है इसलिए वह चेतना को उर्ध्वगमन देता है वो रूखड़ है। करने जैसे सभी काम करता है और न करने जैसे गुरुकृपा से एक भी काम नहीं करता उसका नाम है रूखड़। जो चारों ओर से शुभ ग्रहण करने की शक्ति रखता है उसे मेरी व्यासपीठ रूखड़ कह सकती है।

रूखड़ के धाम, क्षेत्र, गोत्र, धर्मशाला, आहार इत्यादि को भी दार्शनिक कोण से दर्शाते हुए बापू ने कहा कि रूखड़ का क्षेत्र गिरनार है और रूखड़ का धाम है कैलास। रूखड़ का वेश लदर-फदर है! उपर से सब अमंगल परंतु अंदर से परम मंगल। रूखड़ की धर्मशाला सनातन धर्मशाला है। रूखड़ का मंत्र अलख है। रूखड़त्व का आहार है आनंद।

इसके उपरांत 'रूखड़ पुरातन नहीं है लेकिन सनातन है।' 'रूखड़ निंतर जागरूक तत्त्व है।' 'रूखड़ यह समाज का माईलस्टोन है।' 'रूखड़ अर्थात् फूल से प्रगटित सार्वभौम सुगंध।' इत्यादि जैसे तत्त्वगर्भित सूत्र देकर भी बापू ने रूखड़ की सर्वकालीन और सर्वव्याप्त चेतना का महिमागान किया। महाशिवरात्रि के मंगल अवसर पर गिरनार की गोद में आयोजित इस सुंदर रामकथा में मानो स्वयं रूखड़िया जगमगाया और सब ने धन्य हो कर उसको ग्रहण किया।

-नीतिन वडगामा

मानस-रूखड़ : १

रूखड़ एक अवस्था का नाम है

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

बाप! जिसके लिए लगभग हर तरह से यहां गाया गया, ऐसे गौरवशाली गिरनार की गोद में बैठकर भगवान राम की, 'रामचरित मानस' की कथा आरंभ हुई है। जहां तमाम साधना पद्धतियों का समन्वय हुआ है, संगम हुआ है अथवा तो जहां आकर कुछ पाया जा सकता है। लगभग तमाम धर्मों ने प्रामाणिकता से यात्रा की है तब जा के इन धर्मों ने भी बहुत बड़ा संबल प्राप्त किया है। भगवान गुरुदत्त का सत्य, अम्बा का प्रेम, भवनाथ की करुणा सतत मुझे यहां खींचती रही है। ऐसे परम पावन धाम में जब रामकथा का आरंभ हो रहा है तब सब से पहले अपनी प्रसन्नता और आनंद व्यक्त करता हूं। हम सबको इस मंगल प्रसंग पर आशीर्वाद और अपनी प्रसन्नता से भर देने के लिए यहां उपस्थित हुए अनंत श्री विभूषित महामंडलेश्वर पू.भारतीबापू, जिनकी साधनास्थलि में बैठकर नौ दिन रामकथा गाने-श्रवण करनेवाले हैं उस भूमि के अधिष्ठाता पूज्यपाद पुनिताचार्यबापू, पूजनीय माताजी, अन्य सभी मेरे पूज्य चरण, सरकार के प्रतिनिधि, संचालन तंत्र में अपनी युवा-चेतना द्वारा अच्छा विचार करनेवाले पांडेसाहब, विविध क्षेत्र के अधिकारीगण, यहां के सेवाभावी धारासभ्य श्री मशरूभाई, हेमा माँ, मेयरश्री और उनकी टीम, रामकथा समिति के सभी सदस्य भाई-बहनों, निमित्त मात्र यजमान परिवार, अपने साहित्य, अपनी कला के सभी उपासकों, आप सभी श्रावक भाई-बहनों, विद्यार्थी भाई-बहनों आप सभी को व्यासपीठ पर से मोरारिबापू का प्रणाम। जय गिरनारी।

पहली स्पष्टता, यहां रूखड़बावा कहकर 'मानस' के आधार पर, अपने गुरु की कृपा से, अपने संतों के आशीर्वाद से, अपने श्रोताओं की और समग्र समाज की शुभकामना से मैं जो कुछ गाऊंगा उसमें रूखड़ का अर्थ समाज में जैसा प्रचलित है उस ढंग का मेरा रूखड़ नहीं है। जैसे-तैसे जी रहा हो तो कहा जायेगा, जाने दो वह तो रूखड़ है! ऐसी एक संज्ञा का नाम नहीं है, रूखड़ एक अवस्था का नाम है। गुरु की कृपा से जिसने थोड़ी साधना की होगी, वही शायद महसूस कर सकेंगे। फिर से कहता हूं, रूखड़ एक अवस्था का नाम है। मुझको जिस तरह से अम्बाजीधाम की कथा में नवरात्रि के चौथे दिन अचानक रूखड़ याद आया। किस लिए आया यह मुझे पता नहीं। रूखड़ के शरीर में रूखड़ आया! मुझे आज आपको शास्त्रीय या साहित्यिक रूखड़ का शब्दार्थ नहीं बताना है। 'भगवद् गोमंडल' में रूखड़ की परिभाषा है। संस्कृत वाङ्मय में रूखड़ के

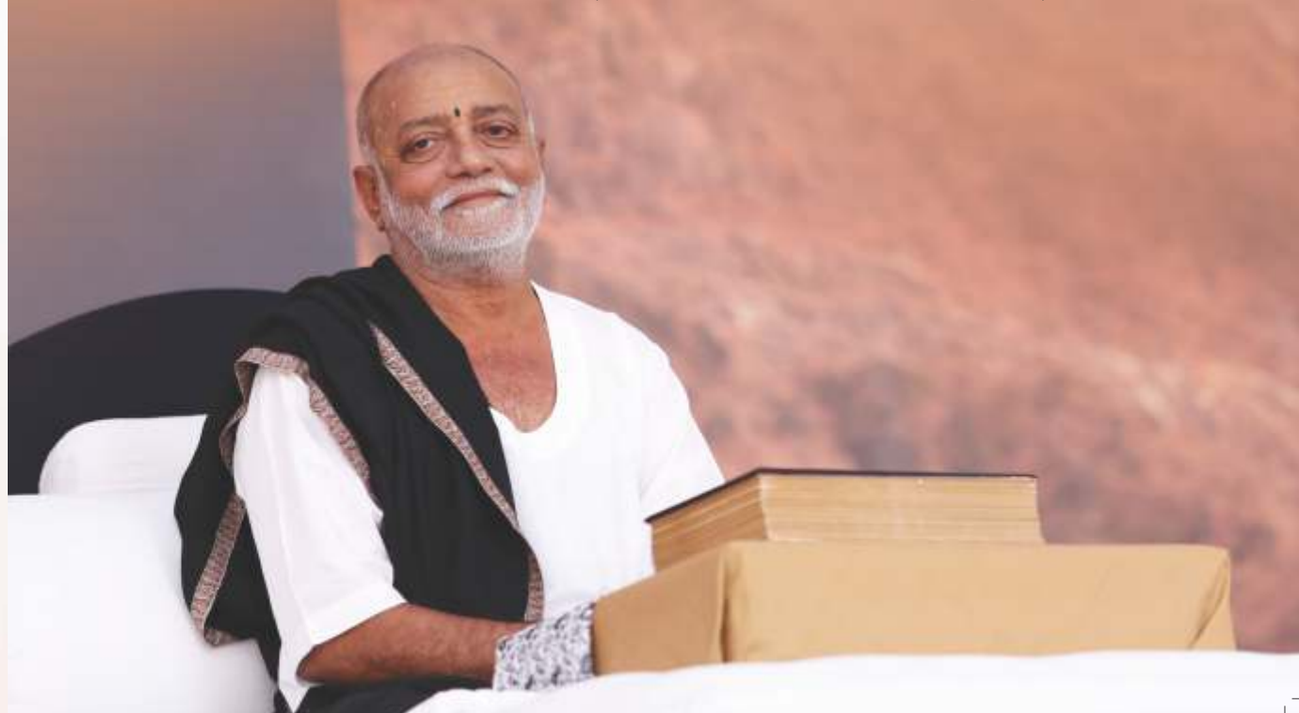

लिए क्या-क्या कहा गया है? यहां सभी संत बैठे हैं। आज सुबह मैंने पू.भारतीबापू को भी कहा, बापू, आप जैसे संतों के आशीर्वाद से हम दौड़ रहे हैं, नहीं तो हम तो जंतु है!

पोथीने परतापे क्यां क्यां पूगिया!

कल मैं दत्त पहुंचा। अलबत्त, डोली में, किसी के कंधे पर चढ़कर गया। इसकी मुझे पीड़ा है। परंतु मुझे हुआ कि बाद में जाना होगा या नहीं, जात्रा कर लेते हैं। किसके प्रताप से? मेरे मन में सतत रटन थी। परमस्नेही नीतिन वडगामा का एक पद है-

पोथीने परतापे क्यां क्यां पूगिया!

पूरी दुनिया को पता है कि मैं पहले से ही अपने सामने हनुमानजी का फोटो रखता हूं। मुझे जब इच्छा होती है तब सामने देख लेता हूं। हमारे पीपावाव में कथा थी बापू, गांव के आदमियों ने यह देखा इसलिए कहने लगे, फोटो में सब कुछ लिखा हुआ आता है इसलिए उसे पढ़-पढ़ कर बोलते हैं! ऐसे ओबामा बोलता है! मोरारिबापू बोलेंगे? अथवा ये टेक्नोलोजी लेकर अपने देश में ही बहुत से बोलते हैं। पर वो मेरी पुस्तक नहीं है, मेरी प्रेरणा है।

एक तो यह जगह साधना की भूमि है। बापू और माताजी ने प्रेम से स्नेहादर और आशीर्वाद देकर यहां ही कथा करो ऐसा कहा है। यहां आकर मैंने देखा तो पूरा गिरनार मुझे दिखता है! वैसे तो हनुमानजी को देखकर बोलता हूं पर यहां नौ दिन मुझे गिरनार को देखकर बोलना है। पू.भारतीबापू, गिरनारीबापू, अमरदासबापू और लालबापू को याद करता हूं। कानजी भूटा बारोट को याद करता हूं। पद्मश्री भीखुदानभाई तो यहां बैठे ही हैं। हम वर्षों से यहां शिवरात्रि का मेला करते हैं। यहां आपको खानगी बात बताऊं, यहां सोये रहें न तो भी साधना हो जाती है! कुछ भी न करो तो भी!

भाण कहे, भटकीश मा, मथी लेने मांय।
समजीने सूई रहे, तो करवुं नथी कांय।

बिल्कुल अतिशयोक्ति नहीं है। संत इसके लिए बहुत कुछ कह सकते हैं। मंगलाचरण दोपहर बारह बजे राष्ट्रगीत के साथ हो गया है, इतने संतों की हाजरी में। लेकिन मैंने ऐसा निश्चित्त किया है कि कथा के दरम्यान पन्द्रह अगस्त अथवा छब्बीस जनवरी आती है तब राष्ट्रध्वज फहराकर ध्वजवंदन करते हैं। फिर हमने जाना कि चौबीस घंटे राष्ट्रध्वज को फहराया जा सकता है? तो मालूम पड़ा कि अंधेरे में राष्ट्रध्वज को नहीं रखा जा सकता। आप इस पर लाईट-प्रकाश रखे तो फहरा सकते हैं। तो मैंने तय किया कि अपने संतों के आशीर्वाद से, गिरनार की कृपा से अब से रामकथा के मंडप पर प्रकाश में एक ओर रामध्वज होगा, दूसरी ओर राष्ट्रध्वज होगा। और यह एक सेतु होगा। कितनी साधनाओं का सेतु बना है यह गिरनार!

पहली स्पष्टता तो यह है कि 'रूखड़' का अर्थ जो सामान्य हो गया है, उस अर्थ में यह चर्चा नहीं है। जिसमें भरपूर भजन है, जिसके रोमरोम में भजन है, मौन में, कभी गा कर, कभी बैठकर, कभी इधर-उधर देखकर, कभी आंसू के साथ, कभी मजूरी करने के पसीने में, अगल-बगल आंखें फाडकर, आंखें बंद करके, कभी आकाश में देखकर, कभी धरती को देखकर, कभी दशों दिशाओं को देखकर जिसने निरंतर हरि को भजा है, ऐसे रूखड़ के चर्चा की यह कथा है। इसलिए कोई भी गलत अर्थ न निकाले। पूज्यपाद अखिल भारतीय साधुसमाज के प्रमुख गोपालानंदजीबापू को मैंने फोन किया था। मुझसे बोले, आशीर्वाद है, कथा कीजिए लहर से। प्रेम से आशीर्वाद दिए। इसलिए बापू, रूखड़ अब मेरे सिर पर आने दो! चौथे नवरात्रि के दिन अंबाजी में मुझे अचानक ही रूखड़ याद आया! मेघाणीभाई ने रूखड़ पर काम शुरू किया है। उन सबको मैं याद करूंगा! पर अचानक नवरात्रि के चौथे दिन जन्मा रूखड़ अब लगभग युवान हुआ है, इसलिए ये अंबाजी उस पर हाथ फिराएं इस कारण मुझे रूखड़ गाना है, आपसे गवाना है। फिर एक बार कहता हूं, इस रूखड़ का अर्थ अलग नहीं करना चाहिए।

बौद्धपद्धति काल में और गोरख परंपरा में 'पाखंड' बहुत पवित्र शब्द था पर कालान्तर में किसी अन्य रूप में प्रयुक्त हुआ! 'पाखंड' यानी जिसने अखंड को पा लिया, खंड-खंड रूप में नहीं। 'पाखंड' बहुत ही शुद्ध शब्द था। जैसे गुरुनानक 'पागल' का अर्थ करते थे, जिसने गल को पा लिया। जिसने सूत्र को समझकर बात पकड़ ली। 'कह कबीर मैं पूरा पाया।' मेरे तुलसी कहते हैं, 'पायो परम विश्राम।' अखंड की प्राप्ति। या तो वो पूर्ण काम होना चाहता है या तो निष्काम होना चाहता है। कालान्तर में 'पाखंड' शब्द का अर्थ बदला क्योंकि ऐसे पवित्र शब्द का दुरुपयोग होने लगा। धर्म के नाम पर लोगों का शोषण, परदे के पीछे परचा, प्रपंच, मान्यताएं, चमत्कार ये सब हुआ! ये सब सही हो तो पूजने योग्य पर परिणाम स्वरूप 'पाखंड' शब्द बदनाम हुआ! मुझे कहने दीजिए, रूखड़ भी ऐसा ही एक शब्दब्रह्म है; जो कालान्तर में शायद सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ। इसके लिए 'रूखड़िया' शब्द भी इस्तेमाल करते हैं। पर जहां मोरारिबापू जिस रूखड़ की परिक्रमा करनेवाले हैं वह रूखड़ एक अवस्था है; एक साधना की सम्पन्नता, एक सत्य, प्रेम और करुणा से लबालब भरा हुआ कोई महापुरुष, कोई महातत्त्व, उसकी चर्चा करनी है। इसलिए कोई साधु समाज के लिए 'रूखड़' शब्द का इस्तेमाल न करे। लेकिन हमारे सभी संतों ने परम इस अर्थ में 'रूखड़' शब्द का प्रयोग किया है। कबीरसाहब ने 'रूखड़ी' शब्द का प्रयोग किये। अपने कबीरसाहब कहते हैं-

कबीरा माया रूखड़ी दोनों फल देत।

उन्होंने माया को रूखड़ी कहा है इससे मुझको बहुत बल मिलता है। रूखड़ ऐसी अवस्था का नाम है कि स्वयं माया रूखडी बनके उसके कदम-कदम पर छाया बन चक्कर लगाती है। माया जिसे आधीन करती है वो नहीं पर माया को जिसके पीछे-पीछे जाना पड़े। 'शिवसूत्र' कहता है, 'श्रीयाम् पादुका'; लक्ष्मी जिसकी पादुका है। इसलिए बाप! हम लोग यहां पाठ को अधिक पक्का करने के लिए रूखड़ गायेंगे। मेरा काम तो ज्ञान का नहीं पर गान का है, क्योंकि ज्ञान आता है तो अहंकार आये बिना नहीं रहता पर गान आता है तो आप प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। इसलिए मैं यहां गिरनार के सामने गाने आया हूं। बापू, गाने और खाने! ललकारना पडेगा! मैं जब छोटा था और शिवरात्रि के मेरे में अकेले आता तब किसी भी डेरे में भूख लगती तो खा लेता था और कहीं भी बिस्तर लेकर सो जाता था। इतना पुराना मेरा वर्षों का गिरनार के साथ का नाता है। लगभग अपने समाज के सभी क्षेत्रों ने अनेक विशिष्ट महापुरुष, विशिष्ट देवियां दिए हैं। ऐसा यह साधनासभर गिरनार है।

नवरात्रि का चौथा दिन रूखड़ का जन्मदिन है। सब पूछते हैं, रूखड़ का जन्मदिन कौन-सा? हम सब नवरात्रि के चौथे दिन केक नहीं काटते पर जहां हो वहां भंडारा करवाते हैं। कल रूखड़ का जन्मदिन है। रूखड़ उसे कहते हैं जो मरता नहीं, जो अविनाशी तत्त्व का उपासक है वो रूखड़ है। तो बाप! ऐसे 'रूखड़' का थोड़ा दर्शन करेंगे और आनंद लेंगे। इसलिए नौ दिन की यह रामकथा है। मुझे तुलसी के आधार पर जो कुछ समझ पड़ेगा वो गाते-गाते बातें करेंगे। मैं उपदेश नहीं देता। मैं अकेला बात करूंगा। आपको सुनना है। बीच-बीच में आपको भी बोलने की छूट दूंगा। प्रश्न पूछने की छूट। गुरुकृपा से मुझे जो कुछ आयेगा उसका जवाब दूंगा। शेष छोड़ दूंगा तो समझ लेना कि आपका प्रश्न पूछने योग्य नहीं था या तो मुझे उसका जवाब नहीं आता!

वरखड़ी को शब्दकोश में रूखड़ कहते हैं। शीतला सातम के त्योहार में बहनें चूल्हा ठंडा करती हैं तब सौराष्ट्र में बहनें उसमें वरखड़ी बोती हैं। उसे रूखड़ कहते हैं। उसका नाम कपास है। मेरा तुलसी उसे बल देता हैं-

साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

इसलिए भूमिका में 'बालकांड' में वंदना प्रकरण की ये दो पंक्तियां। गुरुवंदना के बाद साधुवंदना, संतसमाज की वंदना हुई है। उसकी ये दो पंक्तियां ली है। संतों की कृपा से आशीर्वाद मिला है तो चलिए, ललकारते हैं!

रूखड़ बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो,
जेम झळुंबे रणनी माथे मेघ जो,
एवो गरवाने माथे रे रुखड़ियो झळुंबियो।

प्रभु की कृपा है और मुझे इसका गौरव है कि वैष्णव साधु समाज कुल में मेरा जन्म है। परंतु जन्म तो वहां हुआ है पर साधु बनने के लिए कितना कुछ करना पडता है? और संत होने की अपनी कोई औकात नहीं। समाज उदार है इसलिए कहता है। पर 'बावा' शब्द मुझे लागू पड़ता है। हमें लोग बावा ही कहते हैं! कोई बावा कहता है तो मैं बहुत प्रसन्न होता हूं। और मन में कहता हूं, हो कर तो देख! एक बार वेश तो ले! अंदर शहनाई न बजे तो कहना! तो इसमें रूखड को बावा कहा गया है। और बाप! जो धीरे-धीरे चले वो साधु नहीं? नारायणस्वामी कहते-

मने ज्यां गमे त्यां हरुं छुं फरुं छुं।
पण विचारी विचारीने पगलां भरुं छुं।

किसी ने गाया है कि रूखड! तू ऐसे बादल बनकर आये और चला जाये ऐसा नहीं पर जिसके खेत सूखे हो उसमें नमी डालना और धीरे-धीरे चलना। और साहब! गिरनार पर जगमगाना ये जैसे-तैसे का काम नहीं है! यह अचल है। ढ़ाई करोड वर्ष से यह पहाड़ हिमालय से भी पुराना है। दादा

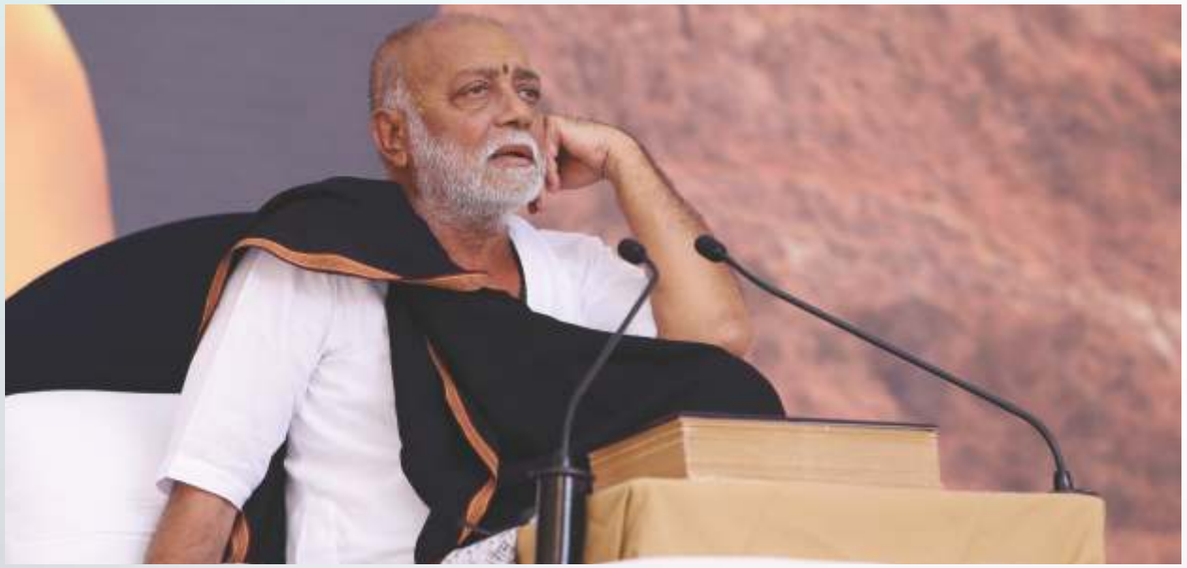

का दादा, उसका दादा, उसका दादा कितना बड़ा! शिवरात्रि के मेले में हिमालय भी कोई न कोई रूप लेकर दादा के पांव छूने आता होगा! हमें क्या पता? और बापू ने कहा, योगी सिद्धि लेने यहां आते हैं और सिद्ध फिर योग लेकर वहां योग करते हैं। साधना पद्धति में ऐसा कहा गया है, पांच सौ योगी आज भी कैलास में कायम निवास करते हैं। वे पांचसौ के पांचसौ शिवरात्रि पर यहां नहीं आते होंगे? मेरी श्रद्धा कहती है।

श्रद्धानो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?
कुरानमां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

हम न पहचाने तो हमारी आंखों का दोष है। रूखड़ का एक अर्थ है कि जो निरंनर 'अलख, अलख, अलख' भजता रहता है, ऐसा शास्त्रों ने कहा है। इसका एक अर्थ 'अलख' नाद गूंजानेवाले है, अलख का अनंत जाप जपनेवाला अथवा जीव जो मायावी है। अभी जिसे पहचान नहीं पड़ती उसके भीतर में अलख की पहचान करानेवाला कोई करुणामूर्ति 'अलख-अलख' बोलता है ऐसे मुखर पात्र का नाम रूखड़ है। मुझको आनंद है कि शिवरात्रि के साथ यह रामकथा जुड़ी है। कुंभज ऋषि के आश्रम में महादेव कथा सुनाने गये तब-

रामकथा मुनिबर्ज बखानी।
सुनी महेस परम सुखु मानी।।

यह एक सेतुबंध है दत्त से दातार का। दत्त का अर्थ है देना। दातार, देनेवाला। यह देनेवालों की मिलन कथा है। पहले दिन ही कहता हूं, यहां से जाने के बाद दो-दो वृक्ष लगाना। चाहे तो यहां भी आप रोप के जाना पर फिर फल लेने नहीं आना! कागबापू लिखते हैं-

झाडवां फळ नथी खातां।
ए जी उपकारी ऐनो आतमा होजी...

तो बाप! सब कुछ संभालना, किसी को तकलीफ़ न हो। ऐसी शिवरात्रि मनायें कि गिरनार का आशीर्वाद ले-लेकर हम प्रसन्न होकर घर जाएं। मेघाणीभाई ने पूरी कथा लिखी है। रूखड़ कौन है? पूरा उसका इतिहास लिखा है। उसकी भी बात करेंगे। और हरीन्द्रभाई दवे ने उन सभी पंक्तियों का आध्यात्मिक अर्थ किया है। उसके बाद जिन-जिन लोगों ने इस विषय पर काम किया है उसे मेरे मगज में आयेगा वैसे याद करता चलूंगा। इसलिए कहता हूं कि रूखड़ जवान होता जा रहा है। सभी अपने-अपने झब्बें औढ़ाते हैं! ऐसा रूखड़ तत्त्व जो परमतत्त्व को पाने के लिए कहीं भटक रहा है। 'चरैवेति', सतत परिभ्रमण, रूखड़ का एक नाम है निरंतर परिभ्रमण; यह तत्त्व परमतत्त्व की खोज में निकलता है और परमतत्त्व को पा जाने पर उस परम तत्त्व को अपने माथे पर रखता है। गिरनार के उपर रूखड़िया जगमगा रहा है। इतनी भूमिका दी, अब

'रामचरित मानस' का मंगलाचरण करूंगा। अलबत्त, मंगलाचरण राष्ट्रगीत के साथ हो गया है परंतु औपचारिकता निभाता हूं। इसके पहले लक्ष्मणबापा से कहताहूं कि रूखड़ को अपने ढंग से दो-तीन पंक्तियों में गाएं इससे रूखड़ की संध्या आरती हो जायेगी और फिर मंगलाचरण करके आज की कथा को मैं विराम दूंगा।

रूखड़ बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो,
जेम झळुंबे रणनी माथे मेघ जो,
एवो गरवाने माथे रे रुखड़ियो झळुंबियो।

'गरवो' शब्द है उसका एक अर्थ है विवेकी। गिरनार पर ही रूखड़ जगमगाये ऐसा नहीं है या हिमालय पर ही जगमगाये ऐसा नहीं। जगत में बाहर से जो गौरवशाली होगा और अंदर से कोमल होगा उस पर ऐसे ही किसी भी संत की कृपा, करुणा जगमगाती होगी। ऊंचाई अर्थात् फूट में मापने की चीज नहीं है। इस भूमि में आकर हम अपने जीवन विकास और आंतरिक विश्राम के लिए खोज न करे तो कहां करेंगे। यह विषय मैंने पहले से ही दे दिया था, 'मानस-रूखड़।' 'रूखड़' तो गुजराती में ही चलेगा। रूखड़ का कोई जातिभेद नहीं होता, प्रांत या राष्ट्रभेद नहीं होता। और गुजराती बहुत सरल भाषा है और मेरा पूरा समाज सामने है। और 'सळ' (अन्तर्दृष्टि) सूझेगी तो रूखड़ को समझना सरल होगा। मुझको तो आपके साथ गाते-गाते बातें करनी है। गाना फिर मैं अकेले थोड़े ही गा रहा हूं? मैं तो परपंरा का जतन कर रहा हूं।

गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बग्यानी।।
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी।
कागभुसुंडि गरुड के ही की।।

'मानस' की प्रवाही परंपरा है। रामकथा का मंगलाचरण करें। 'रामायण' का परिचय है, वेदों का परिचय है, ग्रंथों को जानते हैं। गांधीबापू कहते थे जिसे 'महाभारत' और 'रामायण' का ख्याल नहीं है उसे हिन्दुस्तानी कहलाने का अधिकार नहीं है। 'रामायण' यह तो माँ का दूध है साहब! नौ दिन की कथा की पावन परंपरा के अनुसार पहले दिन ग्रंथ का परिचय। सात सोपान है। बिल्ली के लिए कहा जाता है, सात घर बच्चें घुमाती है तब आंख खुलती है। बिल्ली के लिए सच होगा या नहीं, मेरे जीवन में तो सच है। सात कांड फिर तब थोड़ी-थोड़ी आंखें खुली। उसके पहले आंख खुलती न थी। 'बालकांड' से सातों कांड पूर्ण हो तब गुरुकृपा से थोड़ी आंख खुले; तब जा के पता चलता है-

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहि सुमरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

सात सोपान, सात कांड की कथा है। ग्रंथ सद्गुरु की पदवी प्राप्त करके बैठा है। तुलसी को हुआ मुझे श्लोक को लोक तक पहुंचाना पड़ेगा। तो जैसे बुद्ध, महावीर, कबीरसाहब लोकभोग्य बोली में उतरे उसी प्रकार तुलसी ने संस्कृत में से लोकबोली में इस ग्रंथ का अवतरण किया। सात मंत्रों में प्रत्येक कांड का प्रतिनिधित्व है। सात राग, सात लोक, सात सागर हैं। संगीत में सूर सात ही हैं। ऐसे अनेक अर्थ साधु-संतों से सुनने को मिलता है। सात मंत्रों में मंगलाचरण करके पंचदेवों की अर्चना की है। पांच देवों की पूजा और वंदना आदिशंकराचार्य ने सनातन धर्म में अपने जैसों को समझ में आये इसलिए बताया है। गणेशपूजा, गौरीपूजा, शिवपूजा, सूर्यपूजा और विष्णुपूजा करनी चाहिए। तुलसी वैष्णव परंपरा में हुए। आचार्य परंपरा का मत भिन्न है। जितने भी संत-बुद्धपुरुष हुए, सद्गुरु हुए

पहली स्पष्टता तो यह है कि 'रूखड़' का अर्थ जो सामान्य हो गया है, उस अर्थ में यह चर्चा नहीं है। जिसमें भरपूर भजन है, जिसके रोमरोम में भजन है, मौन में, कभी गाकर, कभी बैठकर, कभी इधर-उधर देखकर, कभी आंसू के साथ, कभी मजूरी करने के पसीने में, अगल-बगल आंखें फाड़कर, आंखें बंद कर के, कभी आकाश में देखकर, कभी धरती को देखकर, कभी दशों दिशाओं को देखकर जिसने निरंतर हरि को भजा है, ऐसे रूखड़ के चर्चा की यह कथा है। वह रूखड़ एक अवस्था है; एक साधना की सम्पन्नता; एक सत्य, प्रेम और करुणा से लबालब भरा हुआ कोई महापुरुष, कोई महातत्त्व, उसकी चर्चा यहां है।

उन्होंने एक ही सत्य जाहिर किया। 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'

युवा भाई-बहनों, पांच देवों की स्तुति करनी चाहिए। गणपति पूजा अर्थात् विवेक की पूजा, सूर्य की पूजा अर्थात् उजाले में जीने का प्रामाणिक प्रयत्न करना। विष्णुपूजा, विचार और दृष्टि केन्द्र को विशाल रखें। शिव अभिषेक; शिव का अर्थ है कल्याण, दूसरे का भला हो ऐसा निरंतर-वैचारिक अभिषेक करना चाहिए। और दुर्गापूजा अर्थात् श्रद्धा। अश्रद्धा या अंधश्रद्धा तो ठीक ही नहीं है पर दंतालीवाले स्वामी सच्चिदानंद कहते हैं, अतिश्रद्धा भी अच्छी नहीं है। सम्यक् श्रद्धा पार्वती है। तुलसी कहते हैं-

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।

गुणातीत श्रद्धा ये पार्वती पूजा है। श्रद्धा अखंड रहे ये गौरीपूजा है। प्रत्यक्ष पांच देवों की पूजा करनी चाहिए पर न हो सके तो ऐसे सूत्रों के द्वारा भी हम उसके साथ रह सकते हैं। परंतु तुलसी गुरुवंदना का दोहा लिखकर ऐसा कहते हैं कि शायद पांचों देवों में न दिखे तो किसी जाग्रत साक्षात् पुरुष की सेवा करना। उसमें पांच देव बैठे होंगे। जीवित नर की सेवा कीजिए-

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

गुरु गणेश है। गुरु विवेक का सागर होता है। गुरु में गौरी है। मैंने हंमेशा कहा है, गुरु होता है उसकी माँ कभी नहीं मरती है। गुरु होता है वो स्वयं सौ-सौ माँ की गरज पूरी करता है। गुरु जगदम्बा है। मेरा हनुमान भी एक बार जगदंबा का स्वरूप लेकर पाताल में से आकर बैठा था। वो गुरु है। गुरु माँ है। बदला ले वो गुरु नहीं, बलिदान देता है वो गुरु है। जानकर ठगा जाए वह रूखड़ है। हमें पता चले कि हमें ठगने के लिए नेटवर्क लगाया गया है ये सब जानकर भी ठगा जाए उसका नाम रूखड़ है। रूखड़ के समक्ष अच्छा शब्द फीट बैठता है 'सुखड।' 'रामचरित मानस' की एक-एक चौपाई मंत्र बन गई गुरुवंदना की चौपाई लिखते-लिखते। हम दो-तीन पंक्तियां गा लें-

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।

गुरुचरणकमल नखज्योति, गुरुचरणरज इन सबकी अद्भुत महिमा है। पहले नयन शुद्ध होता है फिर वाणी। तुलसी को सभी वंदनीय दिखे। तुलसी ने तमाम की वंदना की है। सीधा सूत्र है, हमें दूसरे की निंदा करने की इच्छा प्रकट होती है तो समझना चाहिए कि अभी हमारी आंखें पवित्र नहीं हुई है। किसी से कहना नहीं पर मगज में रखना। साधना करनी हो उसे ऐसे में समय बिगाड़ना नहीं चाहिए। बाप! मेरे तुलसी को समूचा जगत ब्रह्ममय भाषित हुआ और प्रसिद्ध पंक्ति आयी-

सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

श्री हनुमानजी की वंदना नितांत आवश्यक है। साधना के तमाम गुण हनुमानजी में पड़े हैं। 'हनुमानचालीसा', 'हनुमानपाठ', 'स्तुति', 'सुन्दरकांड' बहनें भी कर सकती हैं। 'मानस' के आधार पर देखें तो रावण के निर्वाण के बाद जानकी को खबर देने के लिए हनुमानजी गये तब राक्षसियों ने उनकी पूजा की है तो मेरे देश की बहन-बेटियां क्यों नहीं? खास नियम हो तो अवश्य पालन करना चाहिए। बहुत बार कहा जाता है कि बहनें यज्ञ नहीं कर सकती हैं परंतु बहनों को यज्ञ करने की जरूरत नहीं है। अतिथि के लिए, बच्चों के लिए, घर के सदस्यों के लिए टाईम से रोटी दे वही उनका यज्ञ है। लड़की की शादी हो जाने पर सब कुछ बदल जाता है। संन्यास जैसा हो जाता है। माताओं को अमुक जगह प्रवेश मिलना चाहिए। मुझको तो सभी जगह मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश मिलता है पर मैं जहां से सब दर्शन करते हैं वहीं से करता हूं। देखने के लिए डिस्टन्स जरूरी है। दर्शन और श्रवण के लिए एक निश्चित्त डिस्टन्स आवश्यक है। जिसे त्रापजकार कहते हैं-

समीप संताप छे जाजा, मजा छे दूर रहेवामां।
ऊगे आकाशमां भानु कमळनुं मुखडुं मलके,
रविने भेटवा करतां मजा छे दूर रहेवामां।

इसलिए एक निश्चित डिस्टन्स जरूरी है। हनुमानजी अत्यंत आवश्यक प्राण बल हैं। राम की वंदना करने से पूर्व हनुमंत वंदना जरूरी है।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन ।
सकल अमंगल मूल-निकंदन ।।
पवनतनय संतन-हितकारी ।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी ।।

तुलसी ने पहले सीता-राम की वंदना की है। 'मानस-रूखड़' की सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवादात्मक सूर में हम कल करेंगे।

मानस-रूखड़ : २

गुरु हमारा प्रारब्ध बदल डालता है

'मानस-रूखड़' इस कथा का केन्द्रीय सद्विचार है। 'बालकांड' की जो दो पंक्तियां ली हैं उसका शब्दार्थ समझ लेते हैं। समाज में जितने साधुचरित हैं, जिनका चरित्र कपास के पौधे जैसा है वे रूखड़ है। तुलसी ने कपास के साथ तुलना करके हमें साधु के नजदीक ला दिया। अलबत्त, रूखड़ का एक अर्थ कल्पवृक्ष भी होता है। रूखड़ का एक अर्थ अक्षयवट भी है। फिर रूखड़ का एक अर्थ वटवृक्ष होगा। इस भूमि में वटवृक्ष भी हैं। रूखड़ के तीन अर्थ-आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक है। आधिभौतिक जिसे हम वटवृक्ष के रूप में गिरनार पर देख सकते हैं। अक्षयवट ये धर्मवट है। उसका बड़ा ही महिमावंत स्थान है।

बटु बिस्वास अचल निज धरमा।
तीरथराज समान सुकरमा।।

तुलसीदास का कल्पतरु-कल्पद्रुम-सुरतरु-देवतरु ये आध्यात्मिक वृक्ष हैं। वे उतरे हैं धरती पर। उसका नाम है 'रामचरित मानस।' यह आध्यात्मिक रूखड़ है। रामकथा सुरधेनु के समान है। पर सुरतरु छाया भी हैं। परंतु बहुत नजदीक से हमें रूखड़ समझ में आये इसलिए कपास के फूल के साथ उसकी तुलना की है। कपास का पूरा पौधा हराभरा भरापूरा होता है। आठों पहर आनंद। बहुतों को खाते हैं तब, बहुतों को सोते हैं तब, बहुतों को गाने में-लिखने में, बहुतों को दूसरों की निंदा करने में, दूसरों की भूले खोजने में, ऐसे ही योग्यता के अनुसार आनंद आता है! साधु को आठों पहर आनंद। रूखड़; हिन्दी में 'रूख' अर्थात् 'मूड।' आज मूड बराबर नहीं है। खड़ का अर्थ है रूक जाना। सुख हो या दु:ख, निंदा हो या स्तुति, स्वीकार हो या अस्वीकार, आशीर्वाद हो या शाप हो, रूख के साथ अड़ जाये। शास्त्रीय, साहित्यिक और संतों के अनुभव से निकले रूखड़ के अनेक अर्थ हैं। कपास हराभरा होता है। लोग कपास बहुत बोते हैं। कुदरती तौर पर साधुता को समझने का यह एक चास है ऐसा मुझे लगता है। सभी के आनंद के क्षेत्र अलग-अलग हैं। साधु वह है जो आनंद में अड़ा रहे जो विश्राम को पकड़ रखे। किसी भी परिस्थिति में न हटे।

तो कपास का पौधा हरा हो, उसके फूल को खोलें तो अंदर सफेद रूई है। वह बिल्कुल नीरस है। उसमें कहीं वासना भी नहीं है। शायद कोई उसे जलाये, वह सूखा हो तो जल भी जाये; परंतु उसमें स्नेह का घी मिले तो वह ज्योति अखंड बन जाएगी। जिसका अंत:करण धवल है, वासनामुक्त हृदय है, गुणमयी रेसें हैं, जिसमें तमाम गुण एकत्रित हुए हो। कपास कितना सहन करता है? कपास का सिर काटकर फिर बीज निकालकर अंतिम कालिमा निकालकर फिर उसे घुना जाता है। कातने के बाद चरखी पर चढ़ता है। साधुता चरखी पर चढ़ती है, आटियां बनती हैं, फिर ताने-बाने के लिए

जाती हैं। फिर वस्त्र बनता है। यदि शरीर में घाव होता है तो रूई ही लगाने की बात होती है। आंख हो या कान जहां कुछ हुआ वहां रूई ही लगाओ।

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

यह इसका शब्दार्थ है। परंतु मुझको आनंद है कि जब से 'रूखड़' शब्द पकड़ में आया है तब से अनेक क्षेत्रों में इस पर बहुत काम हो रहा है। अभी भी रूखड़ के विषय में काम होना चाहिए। और रूखड़ ने ऐसा फैलाव लिया है कि सबको उसे उठाना ही पड़ेगा, छुटकारा नहीं है; ऐसी मेरी श्रद्धा है।

रूखड़ बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो...

वृक्ष जगह नहीं बदलता। तो रूखड़ धीरे-धीरे चलेगा? पर साधु मूलत: चलता रहता है। या तो उसे ऊपर गगन में उड़ना है, या तो उसे गहराई में जाना है। लेकिन इन्स्टन्ट नहीं पर धीरे-धीरे। तना भले ही मोटा होता जाये। ये रूखड़पना है। यहां रूखड़ की चर्चा 'मानस' के आधार पर करनी है। 'रामायण' भी स्वयं रूखड़ है, वो मेरा केन्द्रबिंदु है। यह पद है, लोकगीत नहीं है। यह एक अवस्था है, जिसने जमीन भी पकड़ रखी है। हमारे साथ योग साधा है।

रूखड़ बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो,
एवा गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

जूनागढ के आधीन शेरगढ गांव। शिष्ट भाषा में जसमत; पर अपनी भाषा में जहमत सेंजळिया। पति-पत्नी दोनों। एक दिन दरवाजा खुला है। एक लड़का दरवाजे पर आकर कहता हैं, 'पटेलबापा, अंदर आऊं?' 'कौन?' 'मैं वेलिया', 'मुझे संग में रहना है। मुझे आप रखो।' पटेल ने ना कह दी। वह जा रहा था। उसकी पत्नी अधिक जाग्रत जीव थी। पति से बोली, उसे रोको। उसे रख लो न! उसे उसका भाग्य नहीं होगा? पुरुष जानता था कि मेरी पत्नी मुझसे अधिक चतुर है। और ऐसा जब हो तब पुरुष को उस समय झुकने में इज्जत कम नहीं होती। घर का आदमी समझदार हो तो उसकी बात स्वीकार करनी चाहिए। रख लिया। पूछा, 'क्या देना होगा?' वेलिया बोला, 'पटेलबापा, यह मेरी माँ है। अब से मैं उसकी गढ़ी रोटी खाऊंगा।' और लड़के ने काम शुरू किया। संतों का ऐसा अनुभवपूर्ण मत है, इसलिए कहता हूं। इसका शास्त्रों में शायद प्रमाण न मिले तो बेकार मेहनत न कीजिएगा। मनुष्य के प्रारब्ध में परिवर्तन पांच कारणों से होता है। प्रारब्ध कभी बदलता नहीं परंतु टर्न लेता है। किसी ने कहा हो कि आपके जीवन में प्रवास ही है। पर पैदल चलकर जाना हो उसकी जगह हवाई जहाज में जाना पड़े, घुमना तो है ही। इसके पांच कारण हैं। एक अच्छे पुत्र-पुत्री या तो दत्तक लिया हुआ बालक प्रारब्ध को टर्न लिवाता है। अच्छी चेतना हमारे जीवन में संतान रूप में प्रवेश करे वो प्रारब्ध को टर्न कर देती है। दूसरी, सुलक्षणा नारी यदि घर में पत्नी के रूप में आये तो प्रारब्ध फिरता है। परंतु मुझको विचार आता है पुरुष क्यों नहीं? पर उसका तो अपना ही फिरा होता है! जहर पी जाये वो महादेव कहलाता है। अमृत पीये वो देव कहलाता है परंतु जहर पीने पर भी अमृत पीने जैसा मुंह हंसता रखे वो पतिदेव कहलाता है! जलन मातरी का शे'र है-

पीधां जगतनां झेर ए शंकर बनी गयो।
कीधां दु:खो सहन ए पयंबर बनी गयो।

अच्छी नारी का घर में आना प्रारब्ध बदल देता है। यह तो एक बहुत प्राकृत-भौतिक बात है। तीसरा अपना गुरु, जिसमें मेरी बहुत ही निष्ठा है; अपना गुरु अपना प्रारब्ध बदल डालता है। पक्का, पक्का, पक्का। कोई सेवा करो तो सही! मैंने पहले तीन बातें मजाक में कही हैं। पर जहर पीये वो महादेव; अमृत पीये वो देव; जहर पीये फिर भी हंसता हुआ मुख रखे वो पतिदेव परंतु जहर पीकर अपने को अमृत पिलाये वो अपना गुरुदेव। गुरु प्रारब्ध बदलता है, तुलसी ने 'रामचरित मानस' को सद्गुरु की उपमा दी है तब ये शब्द लिखे हैं-

सदगुर ग्यान बिराग जोग के।
बिबुध बैद भव भीम रोग के।।

तुलसीदासजी ने पूरे 'रामचरित मानस' में चार बार 'सद्गुरु' शब्द का प्रयोग किया है। किसलिए? एक कारण यह भी हो सकता है कि ऐसा सद्गुरु मिलने के बाद अपना धर्म सफल होता है; अर्थ भी, काम भी और अपना मोक्ष भी सफल हो। अपना ब्राह्मणपन, क्षत्रियपन, वैश्यपन और सेवकपन सफल हो। अपनी चार अवस्था-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया। ये चारों सफल हो जाये। अपने मन को सुमन-अमन कर दे। अपनी बुद्धि को निश्चयात्मिक कर दे। अपने चित्त को निरोध, बोध कर दे वो सद्गुरु है। हम में कभी भी अहंकार न आने दे वो अपना शंकर-गुरु है। चारों पदार्थ, चारों अवस्था, चारों वेद गुरुमुखी हो तो सफल हो जाये बाप! गुरु अपना प्रारब्ध बदल देता है। सवाल एक ही है, शरणागति एक की ही हो और एक बार ही होती है। प्रणाम सबको हो पर शरण एक ही होनी चाहिए। अपने तो पैसा, प्रसिद्धि के लिए कहां-कहां दौड़ते रहते हैं! परंतु शरणागति बहुत ही कठिन वस्तु है। कभी अनेक वस्तु का भय, प्रलोभन अपनी भक्ति को व्यभिचारिणी कर डालती है! सात-सौ श्लोक पूरा होने आया, तब कडक शब्दों में

कृष्ण बोले हैं, छोड़ ये सब बकवास! 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' तू एक बार मेरा हो जा फिर मेरी जवाबदारी है। मेरे तुलसी कहते हैं-

सखा सोच त्यागहु बल मोरें।
सब बिधि घटब काज मैं तोरें।।

ऐसे गुरु-शिष्य के बीच भी शरणागति पूर्ण नहीं है और द्वेष खड़े होते हैं ऐसे उदाहरण हैं। ये सब भय है। शंकर रावण के गुरु परंतु परमगुरु थक गया! यहां गुरु का कहा सती पत्नी नहीं मानती, वहां रावण की पत्नी मंदोदरी समझाती है पर पति नहीं मानता! मंदोदरी रावण से कहती हैं, 'राम ब्रह्म है, वैर त्याग दो।' गुरु की आश्रित सती नकली सीता का रूप लेती हैं और चेला नकली सीता का अपहरण करता है! सती को बुद्धि का अभिमान है, यहां चेले को अपने बल का अभिमान है, मेरा भुजबल!

गुरु को समझना बहुत ही कठिन है बाप! अमीर खुशरो बारह वर्ष का था तब से निझामुद्दीन की सेवा में था। चालीस वर्ष हो गये जीवन का काम करते हुए। यह बात मैंने बहुत बार कही है। पीर की बहुत सेवा की। एक क्षण विचार आया, ये पीर हैं? सद्गुरु हैं? सामान्य मनुष्य जैसा भाव! उसी समय निझामुद्दीन ओलिया करवट बदलते हुए बोले, 'तुम भी करवट बदल लो!' ऐसा गुरु अपना प्रारब्ध बदल देता है। जीवन में अच्छी संतान, सुलक्षणा नारी, बुद्धपुरुष ये तीन हमारे प्रारब्ध बदल डालते हैं। चौथा, मंत्र; मत्रमहामणि प्रारब्ध बदल देता है। पांचवां, आपका अपना पुरुषार्थ; शायद गुरु में निष्ठा न हो, संतान बराबर न हो, दाम्पत्य बराबर न हो, गुरु की सेवा न की हो फिर भी संतों का ऐसा मानना है कि आपका अपना पुरुषार्थ प्रारब्ध को बदलता है। थोड़ी पतवार चलाओ। वो प्रारब्ध को टर्न कर डालता है। तो ये पांच लक्षण हैं।

वेलिया का आगमन जसमत की पत्नी सेंजलिया का प्रारब्ध बदल रहा है। वेलिया को साथी के रूप में रखा। फिर जसमत के यहां सात पुत्रों का जन्म हुआ पर ये लड़का अपनी माता को बहुत प्रिय था। किसी की बढ़ती हुई साधना को देखकर अगल-बगल के लोग ईर्ष्या करते हैं! आज भी किसी की कला, विद्या, भजन भी सब सहन करते हैं! ईर्ष्या शुरू हुई! जसमत के कान भरना शुरू हुआ! वेलिया कोई काम नहीं करता। अब तो तुम्हारे सात पुत्र हैं। वह खेत में जाकर सोया रहता है, हमने देखा है। ऐसे तो तुम्हारा नष्ट हो जायेगा। लोग कान में ऐसे कीड़े डालते रहते हैं और तब एक करोड़ के आदमी को एक कौड़ी का बना देते हैं। जसमत एक दिन खुद देखने निश्चय करने जाता है। यहां चमत्कार आता है। मैं चमत्कार में नहीं मानता। वर्षो से गिरनार अड़ीग खड़ा है। सुबह में रोज सूर्य उगता है, फूल खिलते हैं यही मेरे लिए चमत्कार है। रात को सोये और सुबह उठ गये यही बड़ा चमत्कार है। नहीं तो यह दीया कब बुझ जाये किसे पता! हम सब रोज यहां कथा में आनंद करते हैं यह चमत्कार नहीं है! दूसरे रोज सहन नहीं कर सकते यह चमत्कार नहीं है! लहर करे, आनंद करे यह कोई गुनाह हैं! साहब! वेलिया सोया है, मुझको जो समझ में आता है वो यही है। और आप सुनने आये हैं सुनना तो पड़ेगा। अपनी जिम्मेदारीपूर्वक कहता हूं, मेघाणीभाई ने लिखा है कि कुदाली अपनेआप खेत में चल रही है! ऐसा कहीं होता है? किसान सो जाये और कुदाली चलती हो? पूरा खेत जुत जायेगा? परंतु मुझको 'रामायण' तुरंत मदद करता है। मुझे तो खूंटा ही सूघना है। मेरे सभी जो सब्जेक्ट, गुरुकृपा और संतों के आशीर्वाद से बोलता हूं परंतु उसका मूल तो 'मानस' ही है। 'मानस' की एक चौपाई है-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।

साधना का ऐसा अनुभव होता है कि आदमी को कुछ करना न पडे और खेत जुत जाये। पुरुषार्थ का अहंकार सो गया। कर्तापन का बोध चला गया वेलिया का। यह भिन्न आत्मा, इसलिए अपने आप सब कुछ होता है! कल बहुत पवन आया, रसोईखाने में मंडप टूटा; आदमियों ने काम किया। यह कोई आकर कर जाता है। मैं तो इसी भरोसे पर बहुत जीता हूं। साधु कौन? साधु सोया हो पर उसकी साधना काम करती है। कुदाली चलती रही है। खेत जोता जा रहा है। मेघाणीभाई ने कहा है। अर्थ तो व्यासपीठ का है। पर ऐसा हो सकता है। नरसिंह मेहता जूनागढ में बैठे-बैठे हुंडी का पत्र लिखते हैं, जिसके पास एक कौड़ी भी नहीं है और द्वारकाधीश उसे स्वीकार भी लेते हैं, तो यह तो बहुत छोटी बात है! आध्यात्मिक जगत में किसी दिन बुद्धि से सब काम नहीं होता। पर सब हो सकता है। एक चीज याद रखिएगा, तर्क से काम नहीं होता पर सतर्क से हो जाता है। सतर्क अर्थात् जाग्रत, सावधान। तर्क कर-करके वेद भी अनंत 'नेति नेति' कहकर रुक गए, तो अपनी क्या औकात?

जसमत सेंजलिया ने सोये हुए वेलिया के पैर पकड़े! 'मैंने तुझसे मजदूरी करवायी? मैं तेरा अपराधी हूं! वेला, जागो! तू कोई पहुंची हुई आत्मा है।' वेलिया की आंख में आंसू आ गये! 'बाप! आप मेरे मालिक है, मैंने बहुत छिपाया पर मेरे हरि को ऐसा लगता है कि अब मेरे यहां से निकल जाने का समय हो गया है इसलिए सब जाहिर हो गया! चलो बापा, अब राम राम! अब मैं निकल जाऊं।' तो कहता है, 'घर तो चल।' वेलिया को माँ के

हाथ की ही रोटी खाने का व्रत था। 'मुझे खाना है, माँ कहां है?' आखिर पता चला कि कंडा के ढेर में से माँ को सांप ने काट लिया है। उसका शरीर काला पड़ गया है और बगल के कमरे में है और फिर करुण रुदन करते हुए माँ के पैर को पकड़कर कहने लगा, 'हे माँ, एक बार रोटी बना दे। ये अन्नपूर्णा, तू थक गई माँ? ये सात लड़के और आठवां मैं, उनकी रोटी बनाते थक गई? एक बार! फिर दुबारा नहीं कहूंगा। एक बार रोटी बना दे!' पांच मिनट वेलिया माँ के पैर को पकड़े हिचकियां भरते-भरते रोता रहा। शायद विष उतर गया होगा। पता नहीं। वह माँ रोटी बना देती है फिर बाद में तो माँ चली जाती है। उर्दू का एक शे'र है-

कज़ा को रोक देती है, दुआ रोशन ज़मीरों की।
भला मंजूर है अपना तो कर खिदमत फ़कीरों की।

मौत को रोक दे; उपनिषद का नचिकेता मौत को मिलने सामने से जाता है, तब मृत्यु हाजिर न थी और मेरे देश की सावित्री अपने पति को मृत्यु के घर से वापस लाती है। यह शक्ति है। स्मरण मरण को हरा सकता है। एकदम मिथ्या चमत्कार नहीं। बहुत से साधु कारण बिना के आठ सौ वर्ष का आयुष्य पाते हैं! 'बापू कुछ खाते नहीं है!' शिष्य कहते हैं, 'मैं चार सौ वर्ष से सेवा कर रहा हूं!' परंतु साधु चमत्कार नहीं करता। साधुपना स्वयं चमत्कार है। पूरे जगत से अलिप्त रहना ये चमत्कार नहीं तो और क्या है? वेलिया निकलकर गिरनार अया। धीरे-धीरे आया होगा। गिरनार की ओर वेलिया की गति शुरू हुई। बहुत वर्षों तक गिरनार की परिक्रमा की। शब्दकोश में रूखड़ का एक अर्थ है आवारा, बेपरवाह। अच्छी चीज कहीं से भी ले सकते हैं।

आवारा हूं, आवारा हूं...
या गर्दीश में हूं आसमान का तारा हूं...

मेरे 'रामायण' ने सिखाया है-

संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।

एक स्थान में ममता नहीं होती। उपर से चलता हो पर अंदर से स्थिर हो, 'चरैवेति।' वसीम बरेलवी का शे'र है-

वो जहां भी रहेगा, रोशनी फ़ैलायेगा।
चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।

दीया का अपना कोई स्थान नहीं होता, जहां बैठ जाएं वहीं उजाला फैलाता हैं। साधु भी जहां जाते हैं वहां उजाला ले जाते हैं।

तो बाप! वेलियाने यहां गिरनार की परिक्रमा करके गुरु की खोज शुरु की। वागनाथ के बाद फिर गुरु ने उसका नाम वेलनाथ रखा। परंतु वैराग्य के पंथ में बहुत से विघ्न आते हैं। सभी संत कहने लगे, 'नाथ तो नौ हैं, दसवां कहां से? मार डाले!' यह आदमी गिरनार चढ़ता है। भैरव जप है। वहां उसका विरोध होता है। वहीं जीवित समाधि ले या समा जाये। कहते हैं, उस ज्योति में मोम भी पिघल गई! वहीं समा गया! फिर बाहर आता है, उसके बाद गिरनार पर कदम रखता है। गिरनार ढीला पड़ जाता है। खड़खड़ बहने की तैयारी होती है। फिर यह पद आया है, ऐसा मेघाणीभाई का मंतव्य है।

रूखड़ बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

फिर तो उसकी साधना और सिद्धि, चमत्कार चलते हैं। परंतु इन सब चीजों में मुझे बहुत अनुकूलता नहीं है। बस इसलिए यहां प्रणाम करें। ऐसी मेघाणीभाई की कथा है। केवल सारांश आपके समक्ष रखा है। परंतु वो तो एक व्यक्ति के रूप में रूखड़ है। लेकिन फूल और सुगंध दो अलग वस्तु है। फूल का आकार रंग, रस, स्थान, माली, मालिक सब होता है पर सुगंध का रंग या आकार नहीं होता। परवीन शाकीर पाकिस्तान की शायराना कहती हैं-

तेरी खुश्बू का पता करती है।
मुझ पे एहसान हवा करती है।

रूखड़ की जो चेतनामयी, जो साधनामयी चीज है उसके साथ संबंध जोड़ना है। मूल ऐतिहासिक रूखड़ का कुछ इस तरह जीवन बताते हैं। रूखड़ किसे कहते हैं? जिसे वाहन का या साधन या साधना का या मिली हुई सिद्धि का बोझ नहीं होता, जिसका चित्त निर्भार है। पर मूल भजन जोड़ेगा। भजन के बदले सेवा नहीं करनी है। सच्ची सेवा तभी होती है जब अपने पास भजन की थाल होती है। यह दुनिया भजन भुलवा देती है! संसारियों को, गृहस्थों को ध्यान रखना चाहिए। भजन के बदले सेवा का उधार नहीं लेना!

हुं करुं हुं करुं ए ज अज्ञानता,
शकटनो भार जयम श्वान ताणे।

अपने समाज में जो संत हैं वे तो हंसते हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर कहते हैं, 'मुस्कुराहट मुक्ति है।' धार्मिक आदमी हंसता हुआ, प्रसन्नचित्त होना चाहिए। धर्म फूल की तरह मुस्कुराता, गाता, हंसता हुआ होना चाहिए। धर्म समाज के अंतिम आदमी तक हाथ बढ़ाकर पूछता होना चाहिए, तुम कैसे हो? बहुत से लोग कहते हैं तुम नरक में जाओगे! इतनी कथा सुनने के बाद कौन नरक में ले जायेगा? और नरक में ले जाये तो वहां भी पोथी लेकर जायेंगे और नौ दिन 'मानस-नरक' कथा चलानी है! आप

जितनों को स्वर्ग में जाना हो वे जाये। मेरे साथ आना हो वे आये! रूखड़ वही है जिसे साधना का भार नहीं है। जो प्रसन्नचित्त है, जो सरल-तरल जीता है। रूखड़ कौन? जिसका जमीन के सभी आकर्षण छूट गये हैं और गगनगढ में खेलने आया है। और जिसे पृथ्वी की सीमित अवस्था नहीं राचती, व्योम की विशालता पसंद है। इसलिए वह चेतना का उर्ध्वगमन करता है वो रूखड़ है। साधु अर्थात् किसी के नजदीक नहीं। लोग कहते हैं, हम क्लोज हैं! पर उसके पास सबका क्लोजअप है! साधु एक प्रामाणिक डिस्टन्स रखता है। और साहब, करने जैसे सभी काम करता है और न करने जैसा गुरुकृपा से एक भी काम नहीं करता उसका नाम रूखड है। सभी संत कोई शिक्षण का, साधना-योग, औषधि का काम करते हैं फिर भी अलिप्त रहते हैं। यहां की कथा की दृष्टि से ये संत रूखड़ ही है। चारों ओर से शुभ ग्रहण करने की शक्ति रखते हैं उन्हें मेरी व्यासपीठ रूखड़ कह सकती है।

अपने यहां 'गुरु'' शब्द का उच्चारण करते हैं तब 'गु' का अर्थ अंधकार, 'रु' का अर्थ प्रकाश है। 'रूखड़' में 'रू' प्रकाश वाचक है। और 'खड़' जो साधु साधना के द्वारा उजाले की खेती करता उसका नाम रूखड़ है। जिसका खेत उजला है उसमें उसने खेती की है। ये सब शास्त्रीय अर्थ है। 'रू' का एक अर्थ पीतल या दूसरी धातु के आभूषण पर सोने-चांदी की गिलट चढ़ाते हैं उसका नाम रू; खड़ का अर्थ हत्या, वध। अब 'रूखड़' को साथ करे तो क्या हुआ? मेरे और आपके उपर से प्रपंच किए प्रभावों की हत्या कर डाले उसका नाम रूखड़ है। इन सबका घात कर डाले ऐसी चेतना का नाम रूखड़। पौराणिक पात्रों में खड़ नाम के एक ऋषि भी है, जिन्होंने तमाम आंतरिक विकारों का वध किया है। 'खड़' शब्द अपने यहां घास के लिये प्रयुक्त होता है। खड़ कठोर है, रू अति कोमल है। इसलिए सबको साथ जोड़े तो कोमल भी हो और कठोर भी हो; जो ब्रह्म का लक्षण उस संत में उतरा हो उसे भी रूखड़ कहते हैं। कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर। 'रूखड़' नाम का वृक्ष भी है। रूखड़ नाम की औषधि रोग में काम आती है। रूखड का बोया हुआ वेलावड, वेलनाथ बाबाजी ने दातून का चीरा डाला उसमें से बरगद हुआ। कबीर के लिए भी कबीरवड हुआ। हरिवंशराय बच्चन ने भी तुलसी के लिए ऐसा कहा है। तुलसी ने नीम के दातून को चीर डाला और जो नीम हुई वो मीठी थी। तुलसी की चौपाई यदि जीभ से छुए और जीभ यदि सुमधुर हो जाये तो उसके नीम से मीठास प्रकट होगी, मुझे इसमें कोई शंका नहीं है। ऐसा हो सकता है। ऐसा और दूसरा भी अपने यहां सब चलता है, गाय खडी थी, उसमें से अपने आप ही दूध झरने लगा और शंकर निकले! नाथद्वारा भी भगवान श्रीनाथजी के लिए ऐसी बात आती है।

गाय स्वयं परमात्मा है। अपने देश में गायों का जतन करें। संतों का आशीर्वाद लेकर कहता हूं कि देश में गायों का जतन होना ही चाहिए। हम सब गाय की पूजा करते हैं पर प्रेम नहीं करते। गाय को कटने नहीं देना चाहिए। गाय बचनी चाहिए। साधुओं के आश्रम में गाय की सेवा होती है। तैंतीस करोड देवताओं ने गायमाता के शरीर में स्थान लिया है। लक्ष्मीजी गाय से कहती हैं, मुझे स्थान दो। गाय कहती है, मेरे रोम-रोम में देवता हैं। मेरे गोबर में लक्ष्मी का वास हुआ है। फिर रूखड़ की समाधि, चेतन समाधि, जीवित समाधि ऐसा बहुत कुछ चलता है! मुझको लगता है, जीते जी समाधि होती ही नहीं, जीते जी तो उपाधि ही होती है! परंतु रूखड़ की तरह जीते जी कोई भी संतापने जिसकी चित्तवृत्ति नहीं बिगाडा! जन्म चाहे जहां हो पर जो खिल जाये उसका नाम रूखड़ है। सोलहों कला से जो खिलता है उसका नाम फूल। तो वेलावड (वटवृक्ष) उसमें से हुआ। हमको प्रेरणा मिलती है, उसमें से उजाला मिलता है। अपनी गति हम ओर अधिक विकसित कर सकते हैं ऐसा रूखड़। उसकी चेतना के विषय में कबीरसाहब ने 'रूखड़ी' शब्द का प्रयोग किया है। मेरे 'रामायण' में तो इतने पदार्थों को संत ही गिना गया है-

संत बिटप सरिता गिरि धरनी।
पर हित हेतु सबन्ह कै करनी।।

और 'संत परम हितकारी', इस न्याय से जो हित के कार्य

> रूखड़ वह है, जिसे साधना का बोझ नहीं है; जो प्रसन्नचित्त है, जो सरल-तरल जीवन जीता है। रूखड़ कौन? जिसके जमीन के सभी आकर्षण छूट गये हैं और गगनगढ में खेलने आया है और जिसको पृथ्वी की सीमित अवस्था नहीं रुचती, व्योम की विशालता पसंद है अर्थात् वह चेतना का ऊर्ध्वगमन करता है वो रूखड़ है। करने जैसे सभी काम करता है और न करने जैसे गुरुकृपा से एक भी काम नहीं करता उसका नाम रूखड है। चारों ओर से शुभ ग्रहण करने की शक्ति रखते हैं उन्हें मेरी व्यासपीठ रूखड़ कह सकती है।

करते हैं उसमें बिटप, सरिता, पर्वत, पृथ्वी भी संत हैं, ऐसी गति तुलसीदास ने बताई है।

अब कथा का क्रम। कलियुग में अपने जैसों के लिए रामनाम की वंदना, जिसे जिस नाम में निष्ठा हो उसकी वंदना करनी चाहिए। तुलसी संकीर्ण-हृदय नहीं हैं। उनका दृष्टिकोण, उनकी विचारधारा गगन जितनी विशाल है। रामनाम ॐकार स्वरूप है। दो अक्षर के नाम 'राम' को भगवान शंकर महामंत्र का दर्जा देकर जप करते हैं।

कथा का सर्वेक्षण कर रहे एक आदमी ने टाईप किया हुआ एक कागज भेजा है! कथा में लाख आदमी हैं पर पच्चीस हजार कथा सुनने, पचास हजार खाली खाने और पच्चीस हजार मेले का आनंद लेने ही आते हैं! तीन दिन कथा में रुका पर कथा न सुनी! साधुओं का भंडारा आप बंद नहीं करा सकते! ऋग्वेद के एक विद्वान, काशी के विद्वान हरदेवजी शर्माजी मुझे कहते हैं कि ऋग्वेद कंठस्थ है पर शरीर अस्वस्थ रहता है! गंगा के किनारे अवधूत ने कहा, विश्राम मिले तब 'ॐ नमः शिवाय' का जप कीजिए और चेकअप कराओ तो भी रोग निवृत्ति की ओर जा रहा हैं! सब होता है। भरोसा होना चाहिए, क्योंकि शंकर के पास विश्वास का दीया है। बहुत डरना नहीं। चेकअप अवश्य कराओ। मुझे बहुत खींच खींचकर बोलने की मनाही करते हैं! पर मरना तो है ही! हरिनाम में बहुत ताकत है। जिससे आराम मिलता है वो राम ही है। दवाई से, इन्जेक्शन से, टिकिया से आराम मिलता है तो वह राम ही है।

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय के आसा।।

मंत्र को सीधा बोलने से सिद्ध हुआ जाता है, उलटा बोलने से शुद्ध हुआजाता है। अपने यहां सिद्ध तो बहुत ही होते थे, हैं और होते रहेंगे। 'संत' विशुद्ध शब्द हैं। अमरमाँ ने देवीदासबापू के चरणों में गाया है-

में तो सिद्ध रे जाणीने तमने सेविया...

परंतु मैं वहां तक पहुंच नहीं सकता इसलिए-

में तो शुद्ध रे जाणीने तमने सेविया...

मेरे गुरु, हमने आपको शुद्ध जानना हैं। लक्ष्मणबापा बारोट कहते हैं, हमने तो शुद्ध हृदय से आपकी सेवा की है, बाकी तो आप जाने! चौरासी शुद्ध पर्याप्त हैं पृथ्वी के गोले को कंट्रोल करने के लिए। सवासौ करोड में सभी क्षेत्रों में हम होंगे उसमें शुद्ध होने की जरूरत है। यह सब कौन कर हा है? यह मंडप कौन लगता है। यह तलगाजरडा के बस की बात नहीं है! पता नहीं चलता ऐसे कितने सिद्धों का सहारा होता है! एक मिनट में क्या-क्या हो सकता है? पर सब कुछ सही सलामत है, तो यह मानना पड़ता है। यह गुरुदत्त गिरनार की शिखर पर बैठा है। यहां अपना भवनाथ बैठा है। इतने संत बैठे हैं। इज्जत जायेगी तो आपकी, हमारा क्या? हम तो भाव-कुभाव से हरिनाम जपनेवाले इन्सान है। हमारी क्या इज्जत जायेगी? परंतु भरोसा रखिए। मेरे लिए तो भरोसा ही भजन है।

सर्वे करने से कुछ नहीं होगा! टी.वी. पर लाईव कथा आती है और जो देखते हैं उनके लिए टी.वी. में से भोजन-बूंदी इत्यादि नहीं निकलती! यहां सब खाने नहीं, हरि को भजने के लिए आते हैं। खाना भी एक भजन ही है। ऋषियों ने कहा है, 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।' आपकी थाली में कोई भोजन परोसे तो साधु ने आपको ब्रह्म परोसा है। आप ब्रह्म ही खाते हैं और अन्न को ब्रह्म ही कहा गया है। और शायद खाने भले ही आते हो पर अपने प्रारब्ध में उतना खिलाना लिखा होता है। बाकी कोई भीख मांगने नहीं आते साहब! माँ अन्नपूर्णा अंबाजी खिलाती हैं। एक-एक कण पर खानेवाले का नाम है।

तो पार्वती का नियम था, 'विष्णु सहस्र नाम' का पाठ करने के बाद रसोई बनाती फिर भोजन। शंकर ने कहा, एक बार रामनाम बोले, हजार के बराबर है। शिव परिवार रामनाम जपता है। परिवार में एक मंत्र हो तो अच्छी बात हैं। परंतु किसी पर दबाव न करें। अलग भी हो सकते हैं। मंत्र का अर्थ विचार भी होता है। उसी पर से अपने यहां 'मंत्रणा' शब्द आया है। परिवार में एक विचार, एक मंत्र हो तो जीवन जीने जैसा लगता है। सतयुग में ध्यान की प्रधानता थी। त्रेतायुग में यज्ञ की प्रधानता थी। वर्तमान में यज्ञ में बलिप्रथा बंद कीजिए। अपने यहां कोंहणा, कंकु डाल कर काटते हैं उसे भी बंद कर दें। संपूर्ण फल ही भगवान को अर्पित कर दो न! नारियल फोड़ते हैं उसमें भी प्रवृत्ति तो प्रहार की ही है। घाव की वृत्ति ही देश में से मिट जानी चाहिए। फाड़ना,तोड़ना मेरे स्वभाव में नहीं है। द्वापर में पूजा-अर्चना-आरती-सेवा प्रधान थी। तुलसी कहते हैं, कलियुग में केवल-केवल रामनाम, हरिनाम है। वही साधन है, वही फल है, वही रस है। नाम लेता है उसने यज्ञ भी किया है! ध्यान भी लग जाएगा। पूजा भी गिनी जाएगी। यज्ञ में जपयज्ञ मुख्य है। आप जिसे मानते हैं उसे जपो। हरिनाम आलस से, भाव से, दुर्भाव से लीजिए; दसों दिशाओं में मंगल होगा। गांधीबापू ने राम के नाम की जो महिमा लिखी है वो पुस्तिका युवानों कभी पढ़ियेगा। अद्भुत नाम प्रताप है! केवल अपने इष्ट का नाम लीजिए। इस कलियुग का बहुत बड़ा सफल, सरल, सबल साधन है हरिनाम।

रूखड़ का क्षेत्र गिरनार है और रूखड़ का धाम कैलास है

आज मैं शुरूआत करूंगा अनंतश्री विभूषित महामंडलेश्वर भारतीबापू से। उन्होंने मुझे एक बहुत ही सुंदर जानकारी दी है। मुझको यह बहुत ही मदद करेगी ऐसी बात बापू ने भेजी है कि हमारे दशनाम में गिरि, पुरी, भारती, वन, पर्वत, सागर, अरण्य, तीर्थ, आश्रम और सरस्वती; दशनाम समस्त शांकरी परंपरा में इतने शब्द हैं। फिर उसमें रूखड़, सुखड़, गोदड़, औधड़, मलंग, फ़कीर। जो दशनाम में याचक माने जाते हैं। दशनाम से वे भिक्षा प्राप्त करते हैं, धूपदान दिखाने का काम करते हैं। बहुत-सी जगह उत्तरक्रिया का भी काम करते हैं, ये सभी परंपराएं लगभग गिरनार में हैं, ऐसा बापू बताते हैं। उनका अपना मेरे प्रति का स्नेहादर उन्होंने व्यक्त किया कि व्यासपीठ पर से जिस रूखड़ की बात हो रही है, वह एक अलग ही रूखड़ है। और मैंने यह पहले ही दिन स्पष्टता की है कि जिस रूखड़ को हम थोड़ी तिरस्कृत भाषा में बोलते हैं वो रूखड़ यहां नहीं है। रूखड़ की जो व्याख्या, व्यासपीठ की ओर से हुई वो 'गरवाने माथे रूखड़ियो झळुंबियो', वो ही भगवान स्वयं दत्तात्रेय हैं। यह बहुत बड़ी बात है। कौन जगमगाया है? यह किसकी छाया में हम मौज कर रहे हैं? परंतु मुझे तो इतना कहना है कि दशनाम के पास जिसने याचना की होगी वो रूखड़ भी कैसा होगा! क्योंकि दशनाम जैसी शांकरी परंपरा, याचकों की झोली में दशनाम में वे दशनाम क्या-क्या आध्यात्मिक प्रसादी नहीं डाले होंगे! और इसीलिए रूखड़ अपने आप महान हो जाते हैं साहब! शायद उसे किसी साधना का अभ्यास नहीं करना पड़ा हो। प्रासादिक ऊंचाई प्राप्त हो गई होगी। और 'रामायण' में तो लिखा है-

यह गुन साधन तें नहिं होई ।
तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई ।।

यह साधन करने से नहीं होता। यह किसी की कृपा से होता है। परंतु जिसने पहले पहल साधना की हो उसे तो साधना करनी ही पड़ेगी। ये तो हम जाकर झोली फैलाते हैं इसलिए अपने को मिल जाता है। बाकी मूल पुरुषों को तो साधना ही करनी पड़ती है। उसके पास से हमें उसकी कृपा से प्राप्त होता है। तो दशनाम के पास से ये औधड़ को रूखड़ को जो सब तत्त्व हैं वो जो भिक्षा साधना से पाया होगा वो प्रासादिक भिक्षा होगी। और इससे रूखड़ इस जगत में जगमगाया है। निरंजनभाई राज्यगुरु ने बहुत सुंदर लिखा है-

रामकथामां हवे रूखड़ भळ्यो, अनहद डंका वाग्या रे।
शब्द पारनो शमियाणो, एमां कंईक जोगंदर जाग्या रे।

तो बाप! रामकथा में 'मानस-रूखड़' शीर्षक को लेकर, उसको केन्द्रबिंदु बनाकर हम सब अपना आंतरिक विकास और अपना आंतरिक विश्राम के लिए एक खोज कर रहे हैं। काश, गिरनार की कृपा से, इन संतों के आशीर्वाद से हमें नौवें दिन कुछ रूखड़ मिले। या तो हम में रूखड़ उगे, या तो हमको रूखड़ समझ में आये, या तो रूखड़ का हम अपने ढंग से परिचय प्राप्त करेंगे।

मुझको आज आप से रूखड़ का धामक्षेत्र कहना है। उसका गोत्र बताना है। यह रूखड़तत्त्व क्या है? और भारतीबापू ने बहुत सुंदर लिखा है कि दत्तभगवान जो बैठे हैं, वे ही जगमगाते हैं न! यह कितनी बड़ी बात है साहब! और हम तो पीढ़ियों से उस चोटी को दत्तात्रेय की चोटी के रूप में ही पहचानते हैं। अडचन तो अब कहां से आये! बाकी वो चोटी तो दत्त की ही है। हम तो उसे उसी आस्था से देख रहे हैं। उच्च पद मिलता है न फिर अडचन बहुत आती है! पीड़ा बिना पाया नहीं जाता। फोड़ा फूटने पर ही आराम होता है। पहले तो वैसे वेदना देता है! पर इसके लिए सीधी-सादी दो पंक्तियां हैं-

हमने जाना मगर करार के बाद।
गम ही मिलता है एतबार के बाद।

आप किसी पर भरोसा रखें तो बाद में आपको दुःख ही मिलता है साहब! आप भरोसा इस तैयारी के साथ ही रखो! भरोसा किसी दिन भी नहीं छोड़ना, चाहे जो हो जाये। हमारे डोलरकाका अलियाबाडा संस्था के और सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के, उन्होंने कितने लोकसाहित्य का दरवाजा खोल डाला था साहब! डोलरकाका वहां थे तब अलियाबाडा गंगाजला विद्यापीठ में, कभी विद्यार्थी झूठा बहाना बताकर छुट्टी ले जाते थे परंतु डोलरकाका साधुचरित थे इसलिए विद्यार्थी झूठ बोलकर कहते कभी कि मेरे बाप ऐसे हो गये हैं, फलाना हो गया है, ऐसा हो गया है! उसमें एक विद्यार्थी ने डोलरकाका से कहा कि आपको वह हर बार छुट्टी लेने में ठगता है! डोलरकाका ने बहुत सुंदर कहा कि उसने मुझे ठगा है मैंने तो उसको नहीं ठगा ना? गम मिलता ही है भरोसे के बाद। और एक शे'र सुनिए-

क्यों न सारे चिराग गुल कर दे?
यहां कौन आता है इन्तज़ार के बाद?

अब दीया बुझा डालो!

हवे तारो मेवाड मीरां छोडशे।
मीरां विनानुं सुख घेरी वळशे ने राज,
रूंवेरूंवेथी तने तोडशे।
गढने होंकारो तो कांगराय देशे,
पण गढमां होंकारो कोण देशे?

-रमेश पारेख

मुझे यह बहुत प्रिय रमेश पारेख का गीत है। गढ को होंकारी तो कगूरें भी देंगे! क्या ये रमेश ने भी कैसा कहा है! मैंने रमेशभाई से भी कहा कि इसमें मुझे मीरां की दया नहीं आती। मीरां तो पा चुकी है। परंतु मुझको राणा की बहुत दया आती है कि अरेरेरे...! अब राणा का क्या होगा? नुकसानी का धंधा कर लिया मेवाडवाले ने!

साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी।

मेरे 'रामचरित मानस' कहता है कि किसी भी दिन साधु की अवज्ञा न कीजिए बाप! श्रद्धा न हो तो हट कर चले जाना चाहिए। बाकी भेख भगवान की निंदा न कीजिए। किस बांबी से कौन-सा जोगीन्दर निकलेगा, मुझे या आपको पता नहीं! हमें ओवरटेक कर जाना है! कौन आपके पास पुजाने आया है! सच्चा संत किसी दिन पुजाने निकले ही नहीं! वो तो पूरे जगत को नारायण स्वरूप मानकर कहीं शिक्षण संस्थाएं स्थापित करता, कहीं गौशालाएं स्थापित करता है, कहीं किसी की फीस भर देता है, कहीं स्वच्छता अभियान चलाता है, कहीं पर्यावरण को मुश्किल न पड़े इस तरह इस जगत की पूजा करता रहता है स्वयं। इस लिए सावधान! हां, अब से किसी को रूखड़िया कहकर निंदा न कीजिएगा। वो रूखड़िया उपरवाला हो तो कहां जायेंगे? और आजादी के बाद अमुक लोगों को आदत पड़ गई है कि मैं अपने शब्दों को वापस लेता हूं! साधु के मुख में से निकले शब्द वापस नहीं आते! साधु स्वयं पीछे हो जाएगा पर शब्द वापस न लेगा। दो बार सोचो फिर बोलो।

तो भेखभगवान हो तो उसे आदर दीजिएगा। हम सब बहुत छोटे पड़ेंगे। हमारे पास मापने का कोई साधन नहीं है। किस बांबी से कौन शेष प्रगट होगा इसकी अपने को खबर नहीं है! इसलिए पग लागकर निकल जाना

चाहिए। झूठी निंदा नहीं करनी चाहिए, किसी की भी नहीं करनी चाहिए, कथा सफल करनी हो तो। नहीं तो पूरे साल का गेहूं छः महिने में ही खा जाओगे! मेरी और आपकी ऊर्जा कितनी खराब हो रही है! और करुणा यह है कि धर्म जगत भी इसमें से बाकात न रह सका! तथाकथित धर्म इसमें से बाकात नहीं रहे। रूखड़ का अर्थ क्या होगा? हम गांव में क्या कहते हैं, खड़ी फसल अर्थात् तैयार उपज, खड़ा मकान, तैयार मकान। रूखड़ वो कपास है जो इस तरह खडा है। भले उसकी ऊंचाई कम है पर फल आएगा। ताड़ बहुत ऊंचा है पर फल एक भी नहीं आता! और साधु वो है उत्तिष्ठ जो खड़ा है समाज के लिए, समाज को जाग्रत रखने के लिए खड़ा है। हमारे लिए खड़ा है। हमें क्या पता चले? कोई भी भाई-बहन, बेटी हो, कोई भी साधारण आदमी तक कथा पहुंचनी चाहिए। यह मेरा हेतु है साहब! यह संकल्प लेकर तलगाजरडा से निकला हूं। आखिरी आदमी परछाना चाहिए। विनोबाजी कहते कि तलहटी में बसी प्रजा, शिखर पर रहे लोगों को देखने में उसकी गरदन दुःख गई है! न वे नीचे आये,न यह समूह उपर जा सका। अब कुछ ऐसा होना चाहिए कि वे थोडे नीचे आने चाहिए और ये थोड़े ऊंचे आने चाहिए और बीच में उनकी भेंट होनी चाहिए। समन्वय होगा, संगम होगा ऐसा होना चाहिए। हमारे मर्हूम मजबूरसाहब कहते-

या तो तू थोड़ा नीचे झूक।
या मुझे थोड़ा उपर उठा ले।

जिसे तथागत बुद्ध मध्यम मार्ग कहते हैं। यह कथा किसी लिए है? इतने सारे विभाग इस कार्य में सद्भाव से लग जाते हैं, इतनी सारी चेतनाएं, ये सब विचारक। इसमें सहायता न कर सके तो कोई तकलीफ़ नहीं, अवरोध तो न बनें, ऐसा शिव संकल्प के साथ आयें। रामकथा का किसको पता नहीं है? रामकथा इतनी ही नहीं है। मेरा राम अयोध्या से पैदल चलकर निकला इसलिए राम रूखड़ है। हम रूखड़ किसको कहते हैं कि जो भ्रमण करता हो। जवाबदारीपूर्वक कहता हूं। औपनिषदीय भाषा में 'चरैवेति चरैवेति।' शंकराचार्य भगवान क्या हैं? 'चरैवेति'; इस भारत को अखंड रखने के लिए बत्तीस वर्ष के इस युवा की पक्की साधना की अवस्था पचासी वर्ष की थी। विवेकानंदजी ने कितने वर्षों में समस्त जगत का एक चक्कर लगाकर भारत के सिर को कितना उन्नत किया! बत्तीस वर्ष में बत्तीससौ वर्ष का काम कर के चले गए! पूरे देश को, पूरी सभ्यता को उन्होंने एक किया, सेतुबंध किया। विनोबाजी कहते कि मुझ पर भरोसा मत करना क्योंकि मेरे विचार रोज नये होंगे। आप मेरे पिछले विचार ही पकड़े रखोगे तो आपको मुझ पर शंका होगी। मेरे लिए रोज नये होने की तैयारी रखिए। क्राइस्ट कह गये हैं कि आदमी को रोज नये कपड़े पहनने चाहिए। जिसस गरीब के पुत्र थे। नये कपड़े न थे पर उसका अर्थ था कि वस्त्र यानी कि आदमी की सद्वृत्ति रोज नई होनी चाहिए। संशोधन जरूरी है, करना ही चाहिए। सत्ता में बैठे हुए आदमी शायद संविधान में संशोधन न कर सके वो उनकी मजबूरी होगी! पर भारत के संतों को धर्म के अंदर संशोधन करना ही चाहिए। अभी जो कुछ अव्यवहारी है, उसे साहस से हटाएं पैर छू करके। हमारे कथागायक पूर्वज मेरी तरह कथा करते थे? फिल्म के गीत गाते थे? पर यह नया दौर है। तलगाजरडा को आखिरी आदमी तक पहुंचना है। कोई मीड-वे निकालना पड़ेगा। उपरवाला नीचे आये, नीचेवाला उपर जा सके। और हम गर्व लेते हैं कि उपर चढ़े तो सब छोटे लगते हैं पर नीचेवाले से जा कर पूछो तो उसे हम भी छोटे ही लगते हैं! जैसे उपर चढ़ जाने का भ्रम है, उसे नीचेवाले भी कहते हैं कि तूं भी मूंगफली के ढेंढी जैसा लगता है! यह नई उपमा!

जिस बुलंदी से इन्सान छोटा लगे,
उस बुलंदी पे जाना नहीं चाहिए।
जिस दीये में हो तेल खैरात का,
उस दीये को जलाना नहीं चाहिए।

-शहूद आलम आफ़ाकी

देवद्रव्य व्यक्तिगत उपयोग में नहीं लेना चाहिए। वह लोगों के लिए होता है। उस से भी नया शब्द कहूं तो 'प्रजाद्रव्य', प्रजा का पैसा हमारे पास आ जाता है वो जनता का पैसा है, प्रजा तक पहुंचाना चाहिए। मैं आपसे वर्षों से कहता रहा हूं कि अपनी कमाई का दसवां हिस्सा निकालो; किसी को सुविधा न हो उसे आंख का ओपरेशन हो, पढ़ने के पैसे का अभाव हो या अन्य कोई भी बीमारी हो तो दवा दीजिए। ये सब पूजा है, ये सब भक्ति है।

मूल से जुड़े रहकर रोज नया फूल खिलना चाहिए। मूल तो भारतीयता, अपना गौरव, अपनी

अस्मिता, अपने ग्रंथ, अपने आचार्य, अपनी पद्धतियां, अपने पतंजलि, अपने तुलसी, अपने कबीर, अपनी मीरां, ये मूल में रहे पर फूल तो रोज नया खिलना चाहिए। इसलिए आखिरी आदमी परछाना चाहिए। यह तो बहुत अच्छा है समाज में। राजनीति में रहे अमुक लोगों के दौड़-दौड़ के वस्त्र फाड़ डाले हैं! कल धर्म की यह दशा न हो उसे पहले जाग जाने की जरूरत है। यह कथा इसीलिए है। बाकी आपको कथा पता है। पर धर्म यदि पीड़ा न दे तो समझना चाहिए कि हमने अभी धर्म पाला नहीं है। यह चेला कूटा गया है! ये जलारामबापा ने एक बाबा के बोल पर माँ वीरबाई को सौंप दिया था। ये सताधार, यही अपनी जगहें, ये चारों ओर से चार्ज हुए पहाड हैं साहब! आपके पास पीन होनी चाहिए; जहां लगाओगे आप चार्ज हो जाओगे पर हम तो इन पहाड़ों में अपना नाम लिखने में रह जाते हैं ना? मैं तो कहता हूं कि गिरनार जाओ तो गिरनार का फोटो खींचने में नहीं रहना चाहिए, चेतना को आत्मसात् करना चाहिए। इसका एक-एक पत्थर बोतला है। क्योंकि दत्त उसके उपर जगमगा रहे हैं। कितनी बड़ी छाया में खडे हैं!

'रूखड़' शब्द का अर्थ 'भगवद् गोमंडल' में पुछवाया। कितने सारे लोग अपने अभ्यास की इसमें आहुति देते हैं! मैं सबको याद करता हूं। रूखड़ नाम का एक वृक्ष है, उसका फल है, जिसमें से आटे जैसी वस्तु निकलती है। उस आटे से पित्त का नाश होता है इतना ही नहीं, अमुक वैद्यों से मैंने सुना है कि मात्रा में कफ भी कम होती है। और वायु को भी कम करता है। इसलिए मुझे लगता है कि रूखड़ीतत्त्व उसे कहेंगे कि अपने काम को कम करे, अपने लोभ को कम करे और क्रोधरूपी पित्त के प्रकोप को शांत करे, ऐसा जो चैतन्य तत्त्व है, ऐसी आध्यात्मिक औषधि का नाम रूखड़ है। इसे अनेक एन्गल से देखना पड़ेगा। तीनों अक्षर अलग करें। 'रू' यानी कपास, पूनी, सुकोमल, नीरस, विशद, धवल, शुभ्र तार-तार। 'ख' यानी सुगंध; खस का इत्र आता है। जो रूई की तरह कोमल होता है, खस जैसी सुगंध फैलाता हो। 'ड़' यानी जिसे ओडकार आ गया है। पूर्ण काम को भी, शून्य काम को भी रूखड़ कहा जाएगा। शंकराचार्य पूर्ण काम करते हैं; बुद्ध शून्य की बात करते हैं। परंतु तत्त्वत: वह रूखड़ की ही व्याख्या है। इसलिए यहां जो रूखड़ की बात है वो यह है। मेरा जो सहज प्रवाह है वो इतना ही है कि सबका स्वीकार हो। तलगाजरडा किसी को सुधारने नहीं निकला है; वो सबको स्वीकारने ही निकला है। आप आयें, बस! किसे सुधार सकते हैं? गांधीबापू अपने पुत्र को समझा सके थे? शंकर भगवान सती को न समझा सके थे! आपका क्या अनुभव है? कबीर ने सब को स्वीकार किया, नानक ने सब को स्वीकार किया, ऐसे जो तत्त्व हैं वे छोटे से छोटे तत्त्व का भी तिरस्कार नहीं करते; नहीं तो-

हवे तारो मेवाड मीरां छोडशे।
मीरां विनानुं सुख घेरी वळशे ने राज,
रूंवेरूंवेथी तने तोडशे।
गढने होंकारो तो कांगराय देशे,
पण गढमां होंकारो कोण देशे?

●

साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी।।
रावन जबहिं विभीषन त्यागा।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।।

'मानस' महोर लगाता है। रावण ने जब से विभीषण का त्याग किया तब से अभागा रावण वैभवहीन बन गया! साध बहुत-से थे। मीरां रास्ते पर निकल गई फिर रास्ते वापस मुड़ गए कि तुम्हारे लिए अब द्वारका के रास्ते बंद है! लिखा है कि पादर आकर रास्ता वापस मुड़ गया। 'रास्ता बंद है', इसका बोर्ड लग गया था! तुम अब तामसता के अधिकारी हो, धिक्कारने के अधिकारी हो। मुझे बहुत अच्छा लगता है कि द्वारका की धजा ने मीरां को आमंत्रण दिया। ये ध्वजाएं मुझे और आपको आमंत्रण दे रही हैं। ये भवनाथ की ध्वजा चढ़ेगी ये पूरे विश्व को, जोगी-भोगी सब को आमंत्रण देती है। यह रूखड़तत्त्व जो है वो ऐसा है। रूखड़ में पुरुष शरीर या नारीशरीर का भेद नहीं है। वो शरीर प्रधान नहीं है, चेतनाप्रधान है।

रूखड़ का धाम कहां है? रूखड़ का क्षेत्र कौन-सा? रूखड़ की धर्मशाला कौन-सी? रूखड़ का आहार क्या है? आचार्य परंपरा में जो है, हमारी निम्बार्कीय परंपरा में हूं इसका मुझे गौरव है, मुझे आनंद है। प्रवाही परंपरा का मैं हूं, जड़ परंपरा का नहीं। प्रवाही परंपरा गंगधारा की भांति होनी चाहिए। उसी गंगाजल का आप बर्फ कर डाले तो वो कपड़ा फाड डालेगा। परंपरा जब जड़ हो जाती है तब नुकसान करती है। बहती होनी चाहिए। चाहे भले कितने मोड़ से गुजरना पड़े। पवित्रता तभी संभलती है जब प्रवाहमान होती है। अभी इक्कीसवीं सदी चल रही है। प्रवाहमान रहना चाहिए। जातुष तो ऐसा कहता हैं-

में नदीने जीववानी रीत पूछी'ती,
ए कशुं बोली नहीं, व्हेती रही खळखळ।

बहते रहने का नाम जीवन है। इसीलिए ही इस देश की जवानी धर्म से विमुख होती जा रही है। वे चाहे जैसे हो उन्हें स्वीकार कीजिए। आज कितना सुंदर है हमारे समक्ष! नहीं तो चालीस वर्ष पहले मेरी कथा में बूढ़े ही बैठते थे! जो घर में एक भी काम के नहीं थे वे सब मेरे माथे! अब युवानी आने लगी है, देश-विदेश में सभी जगह। यह शायद इक्कीसवीं सदी का शगुन है। यह कथा सुन रही युवानी को किसी की नजर न लगे इसलिए मैं गिरनार का मानसिक रूप से छोटा-सा पथ्थर ले कर उनकी नजर उतार लेता हूं। इतनी शांति से कोई सुनेगा? आपकी कथा सुनने की भूख को प्रणाम करता हूं। मुझे भी एक कथा पूर्ण होने पर होता है कि दूसरी कथा कब करूं? मुझसे रहा नहीं जाता कथा के बिना! मुझे होता है कि गाता रहूं, बोलता रहूं! और मुझे किसी से कुछ नहीं लेना है। आप पूछ लेना कि बापू को कितना दिया! बिल्कुल मुफ्त में करता हूं!

आवारा हूं, आवारा हूं...
या गर्दीश में हूं आसमान का तारा हूं।

यह रूखड़ का गीत है। आवारा अर्थात् आवारगी नहीं, भटकना नहीं। समझकर जो परिभ्रमण शुरू किया है वो। भटकना अलग वस्तु है और परिकम्मा करना अलग वस्तु है। गिरनारी परिकम्मा करता है। वो भटके निकला है? उसके केन्द्र में कोई देवत्व है। 'आवारा' गीत के शब्द एक मस्तमौला साधु को शोभित करे ऐसा है। फिल्म का गीत है तो क्या हुआ? सोना कीचड में पड़ा हो तो सोना मिट नहीं जाता। उसे धोने की अपनी तैयारी होनी चाहिए। उसी तरह अमुक गीत, अमुक जगह प्रयुक्त हो गये इससे खराब हो गये ऐसा नहीं है। उसे संशोधन करके वापस प्रयोग करे! उसका भाव बदल के, आपका दृष्टिकोण बदल के। राजेन्द्र शुक्ल ने कहा कि 'मैं अपनी चोटी पर जा रहूं।' सबकी अपनी अपनी एक ऊंचाई होती है। अपने अंदर गुरुकृपा से एक गिरनार होता है। उसमें साधना पद्धति के अनुसार एक-एक चौटी पर कब्जा कर के साधक बैठा होता है। उसमें तो कहीं कोई दत्त तक पहुंच गया है, कोई अंबाजी तक पहुंच गया है। सबका एक अपना-अपना गिरनार है, अपनी-अपनी मौज है। कौन रूखड़? शंकराचार्य लिखते हैं, 'न जातिभेद', जिसे जादिभेद, वर्णभेद, वर्गभेद नहीं है; जिसे भाषाभेद नहीं है, जिसे प्रांतभेद नहीं, जिसे कोई देश-देशांतर का भेद नहीं है। ऐसे तत्त्व को शंकराचार्य कहते हैं, 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्'; रूखड़ तत्त्व, उन्नति-पतन जैसे द्वैत से मुक्त है। मैं जहा हूं, वहीं हूं। इस गीत के शब्द जो सब्जेक्ट चल रहा है उसके कुछ लक्षण प्रगट करते हैं। फिल्मों में जैसे भी गाया गया हो। जीवन का सत्य है इसमें। जो अवधूती दशा होती है, फकीरी में जीते होंगे, जिसका मस्तमौला जीवन होगा, सबके बीच होकर भी जो पर होगा, उसके कुछ लक्षणों की ओर इस गीत का संकेत है, ऐसा मुझे समझ में आया है।

तो रूखड़ इस कथा का केन्द्रबिंदु है। रूखड़ के धामक्षेत्र मुझे कहने हैं। एक रूखड़ का क्षेत्र कौन-सा? मेरे पास स्पष्ट जवाब है, 'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणम् अन्त:करणप्रवृत्तय:।' अपने यहां प्रमाण का एक न्याय आया, प्रत्यक्ष न्याय और अनुमान प्रमाण; ये सब शास्त्रीय प्रमाण है। पर एक ऐसा मंतव्य आया कि अन्त:करण प्रवृत्ति प्रमाण होती है। साधु हृदय की अन्त:करण की प्रवृत्ति को आखिर में अंतिम प्रमाण मानने में आया। रूखड़ शायद शास्त्र की भाषा में न बोले पर अन्त:करण की प्रवृत्ति को प्रमाण मानता है। वो शायद संस्कृत वाङ्मय में नहीं बोल सकेगा। मैं आप लोगों को बंधन में नहीं डालना चाहता पर आपको यदि किसी बुद्धपुरुष में सचमुच श्रद्धा हो और सामनेवाला बुद्धपुरुष हो तो वह एक बार जो कहे उसे मान लेना। फिर उसे बार-बार मत बुलवाना। उसने कहा कि यह करो फिर उसमें विकल्प खड़े न करो, यदि वो बुद्धपुरुष हो तो। और यदि आपका विश्वास अखंड हो तो त्रिसत्य भी न कराये साधु से। हमें तो गुरु करना है पर वचन की जो गरिमा है उसे ग्रहण नहीं करना है! वचन की महिमा बहुत बड़ी है।

तो रूखड़ का क्षेत्र। मेरे पास स्पष्ट जवाब है, अन्त:करण प्रमाण। मैं स्पष्ट कह सकता हूं, रूखड़ का क्षेत्र गिरनार है। इसके सिवाय रूखड़ का कोई क्षेत्र हो नहीं सकता। यह मेरी व्यक्तिगत समझ है। आपको मान लेने की जरूरत नहीं है। इस पर चिंतन करिएगा तो बहुत खुश होऊंगा। इस पर होमवर्क करेंगे तो खुश होऊंगा। वैसे ही न मान लेना प्लीज़! व्यक्ति को भी समझे बिना न पकडो और उसके वक्तव्य को भी समझे बिना न अपनाओ।

तुल्यनिन्दास्तुनिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेत: स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नर:।

'गीता' में यह रूखड़ का लक्षण है। 'रामायण' कहता है-

निंदा स्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।

शब्दों का खेल है, शब्दों से क्या लेना-देना? आप अपना सत् बनाये रखें न! एक सुंदर गज़ल है गोविंद गुलशनसाहब की; 'गुलशन' तखल्लुस है, शायर का नाम गोविंद है।

दिल है उसी के पास, सांसें भी उसी के पास।
देखा उसे तो रह गई आंखें उसी के पास।
मज़हब का नाम दीजिए या और कोई नाम,
सब जा रही हैं दोस्तो राहें उसी के पास।

तो रूखड़ का क्षेत्र गिरनार है। जगत में कहीं भी रूखड़तत्त्व होगा उसका क्षेत्र गिरनार है। धाम है रूखड़ का कैलास। रूखड़ी चेतना का कोई भी धाम होगा वो कैलास है। कारण? भगवान शंकर के रूप में जो वर्णन है वो रूखड़ से मिलता आता है।

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।

वेश कैसा? लदरवदर! रूखड़ के वेश का कोई ठिकाना नहीं! उपर से सब अमंगल पर अंदर से परम मंगल। रूखड़ की धर्मशाला कौन-सी? हमारी निम्बार्कीय परंपरा में साधु की धर्मशाला मथुरा गिनी जाती है पर इस रूखड़ की धर्मशाला मुझे कहने दीजिए, भवनाथ में जो सनातन धर्मशाला है वो है। परंतु यहां बहुत ऊंचाई की बात है। सनातन अर्थात्? रूखड़ जिस परमतत्त्व की खोज में है वह परमतत्त्व मिलने के बाद उसके कंधे पर बैठकर रूखड़िया जो जगमगाता है, उस रूप में उस तत्त्व की धर्मशाला सनातन ही होती है, पुरातन हो ही नहीं सकती, नित-नूतन ही होगी। रूखड़ का मंत्र अलख है, फिर 'निरंजन' लगायें। जैसे कि राम ही मंत्र है, फिर आप 'श्री' लगायें, 'ॐ' लगायें। रूखड़तत्त्व का आहार है आनंद। वह आनंद खाता है। आनंद पांच प्रकार के। ये पांच प्रकार के आनंद के नाम हैं-सच्चिदानंद, परमानंद, ब्रह्मानंद, सहजानंद, शिवानंद। हमारी वैष्णवी निम्बार्कीय परंपरा में तो हरिनाम आहार है। अपना-अपना प्रवाह है परंतु जब रूखड़ का वेगीला प्रवाह आ रहा है; उसका आहार है आनंद। रूखड़ को भक्तिपरक आप ले जाये तो आपका आहार परमानंद। क्योंकि 'परमानंद' शब्द भक्तिमार्ग का है।

परमानंद पूरि मन राजा।
कहा बोलाइ बजावहु बाजा।।

भक्ति में नाचना, बजाना, गाना होता है। और ज्ञानमार्ग में ब्रह्मानंद उसका खुराक है।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना।
मानहुँ ब्रह्मानंद समाना।।

●

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू।
रामु सहज आनंद निधानू।।

यह हुआ सहजानंद। यह बानगी गुरुकृपा के बिना नहीं मिलेगी। जिसमें मेरा और आपका साधन का कोई खेद न हो। गुरु कह दे और हम सहज आनंद में लहर करे वो सहजानंद। एक आनंद है औपनिषदीय आनंद।

राम सच्चिदानंद दिनेसा।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।।

और फिर अंत में शिवानंद। ज्ञानमार्ग का रूखड़ होगा तो ब्रह्मानंद होगा। भक्तिमार्ग का रूखड़ होगा तो दोनों में चलेगा। नरसिंह मेहता, वे तो कहते-

ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे...

और परमानंद की बात भी नरसिंह कहते। ये नरसिंह बड़ा रूखड़ है।

रूखड़ का क्षेत्र है गिरनार; धाम कैलास; मंत्र अलख; आहार आनंद; धर्मशाला सनातन और देवी है अंबाजी। रूखड़ की देवी अंबा है। रूखड़ का पथ कौन-सा? किस पथ पर चलता है? कभी तो वह आकाश में दिखता है। कभी कुएं पर मोर की तरह दिखता है। कभी नर उपर नारी की तरह दिखता है। कभी मुरली पर नाग हो वैसा दिखता है और कभी पुत्र के उपर बाप इतराता है वैसा

दिखता है। इतने-इतने प्रतीक इसमें आये हैं। और उसका पंथ कैसा? कृष्णमूर्ति कहते हैं 'पाथलेस पाथ।' पंथमुक्त पंथ, ये रूखड़ का मार्ग है। जो छोटे रास्ते में बंद न होगा। 'पंथ' शब्द आता है तो संकरा बन जाता है। 'संप्रदाय' बहुत अच्छा शब्द है, पर ग्रूप में बदल जाता है। तथाकथित धर्म भी अपने बाडा में बंध गये हैं! इन सब से जो उपर उठे उसे रूखड़ कहेंगे। सब से जो बाहर निकल गया वो रूखड़। पंथमुक्त पंथ, सर्वोच्च मार्ग है। हम सब रास्ते में बंध जाते हैं। और जो बुद्धपुरुष है वो हमें बांधता नहीं। वो हमें आशीर्वाद देकर मुक्त रखता है कि तेरी रुचि में जो हो सो कर। वह योगा मागे तो योगा दे देगा, जप मागे तो जप दे देगा, माला मागे तो माला दे देगा और ध्यान चाहिए तो ध्यान सिखा देगा। जिस मार्ग से जाना हो वो दे देगा, थोकबंद होता है उसके पास। रिटेईलवाले का काम नहीं है इसमें! ओल इन वन। जिस रुचि का साधक आता है उसे उसकी रुचि अनुसार देता है। संप्रदाय तो क्या करते हैं, उनका ही सब पकड़ाते हैं! संप्रदायों में वैष्णवों का उर्ध्वपुंड। हमारी फिर काली बिंदी। शैवों का आडपुंड, तिलक। रूखड़ चेतना ऐसी है जो छाप-तिलक से मुक्त है। वह संप्रदायमुक्त, पंथमुक्त एक उपर उठी हुई चेतना है।

रूखड़ की गायत्री कौन-सी? हमारी तो गोपाल गायत्री। हमारा वेद, सामवेद। रूखड़ की गायत्री जो वैदिक गायत्री है वो रूखड़ की गायत्री नहीं है क्योंकि रूखड़तत्त्व उसका नाम है जो निर्वेद पाया हुआ है। रूखड़ एक ऐसी ऊंचाई का नाम है जो निर्वेद को पाया हुआ है। फिर वह जो बोलता है तो वेद कहलाता है। वैदिक गायत्री अथवा तो संप्रदाय की, परंपरा की इत्यादि। पर रूखड़तत्त्व की गायत्री कौन-सी? दूध और पानी को देखते ही अलग कर दे ये दृष्टि ही उसकी गायत्री है। वह व्याख्या करने नहीं बैठता। ऐसी प्रज्ञा का लक्षण है। यह किसी शब्द में रखी जा सके ऐसी नहीं है यह गायत्री। शब्दातीत गायत्री है। वेद है रूखड़ का निर्वेद। वेद भगवान ने ही जिसे आशीर्वाद दे दिया है फिर वह जो बोलता है वेद निकलने लगता है। यह निर्वेद अवस्था रूखड़ परंपरा प्रवाही परंपरा की अवस्था मेरी दृष्टि से है। रूखड़ का गोत्र क्या? मुझे कहना चाहिए, अच्युत गोत्र। चौबीस घंटें में जो एक क्षण च्युत न हो। उसका भजन न टूटे। अर्थात् क्षणिक भी जिसे पतन का विचार न आया हो ऐसा जीवनतत्त्व वही उसका गोत्र है। इसमें कहीं परंपरा नहीं आती। यह एक मैदान का तत्त्व है। मेरे दादा ने सिखाया उसमें इतना ही था। पर रूखड़ का स्वभाव कैसा? रूखड़ का स्वभाव गाना और नाचना। रूखड़ जहां होता है वहां गाने बैठ जाता है। महफ़िल हो तो वहां और नाचना चाहे तब। दुनिया चाहे जो कहे! मेरे 'मानस' में सुतीक्ष्ण रूखड़ है। कहां जाता है पता नहीं! कभी इधर भागता है कभी उधर! कभी नृत्य, कभी गीत गाता है राम के लिए। यह रूखड़ दशा का नाम है। रूखड़ का शृंगार? तुलसी की माला? रुद्राक्ष की माला? स्फटिक की माला? मणि की माला? तस्बी? खास तौर से आंख का शृंगार? मुझे ऐसा लगता है। रूखड़ का शृंगार उसके आंसू है। रूखड़ की आंखों में किसी दिन दुष्काल नहीं होता, सजलता होगी। रूखड़ी चेतना की तरह गोपियां थक गई, गोविंद, गोविंद करके! शुकदेवजी कहते हैं, गोपियां रास के लिए तैयारी की थी उन पर पानी फिर गया! अब तो एक ही शृंगार था। आंख का शृंगार। हरिदर्शन पर वाया आंसू जाना पड़ता है। दृगबिंदु ये रूखड़ का शृंगार है। और उसका प्रभाव त्रिभुवन पर छाया हुआ होता है।

रूखड़ का क्षेत्र गिरनार है। जगत में कहीं भी रूखड़तत्त्व होगा उसका क्षेत्र गिरनार है। धाम है रूखड़ का कैलास। रूखड़ी चेतना का कोई भी धाम होगा वो कैलास है। कारण? शंकर के रूप का जो वर्णन है वो रूखड़ से मिलता आता है। वेश कैसा? लदरवदर! उपर से सब अमंगल पर अंदर से परम मंगल। रूखड़ की धर्मशाला कौन-सी? इस रूखड़ की धर्मशाला मुझे कहने दीजिए, भवनाथ में जो सनातन धर्मशाला है वो है। सनातन अर्थात्? रूखड़ जिस परमतत्त्व की खोज में है, वो परमतत्त्व मिलने के बाद उसके कंधे पर बैठकर रूखड़िया जो जगमगाता है, उस तत्त्व की धर्मशााला सनातन ही होगी, पुरातन होगी ही नहीं। रूखड़ का मंत्र अलख है। रूखड़तत्त्व का आहार है आनंद। वो आनंद खाता है।

मानस-रूखड़ : ४

रूखड़ पुरातन नहीं पर सनातन है

'मानस-रूखड़', इसका तत्त्वदर्शन गुरुकृपा से, संतों के आशीर्वाद से हम और आप कर रहे हैं। यथामति, यथासमय, यथासमझ इसमें मैं प्रवेश करूं इससे पहले गतकल अपने कवि दादल की एक पुस्तक 'गांधी सत अवतार', उसका लोकार्पण किया था। आज 'गीरनी गंगोत्री' पुस्तक का लोकार्पण अभी किया है। इस पुस्तक के सर्जक, गायक राजभा पर गीरकृपा तो है ही परंतु मुक्तानंदबापू की गिरिकृपा भी है। और हमें बहुत ही अच्छा प्रेरणादायी प्रकाश देनेवाला साहित्य प्राप्त हुआ है। मैं अपनी खूब ही प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। कल पुस्तक का विमोचन करते समय कहा कि जब पुस्तक का विमोचन हो तब गुरुकृपा से हाथ जितना शुद्ध हो उसकी अपेक्षा अधिक शुद्ध हो रहा है ऐसा अनुभव होता है। राजभा की एक पुस्तक समर्पित हुई है समाज को। उसकी निजता है और वो निजता बरकरार रहे ऐसी माताजी के चरणों में प्रार्थना है। एक गंगोत्री गिरि से निकली है और दूसरी गंगोत्री गीर में से निकली है। गिरि श्रीलोक से परछा गया और गीर लोक से परछा गया है! कैसे-कैसे प्रतीक खोज कर लाया है युवक! मैं बहुत आनंदित होता हूं बाप! कितने हाथ से परछना? ये तो माँ अंबा ही परछन कर सकती हैं। अपना हाथ तो छोटा पड़ेगा। दिल्ही में एक पत्रकारबहन ने मुझसे कहा था कि बापू, आपकी काली दाढ़ीवाला फोटो देखती हूं तो आप मुझे बापू नहीं लगते, डाकू लगते हैं! और मैंने अपनी दो-तीन काली दाढ़ीवाली फोटो देखी और मुझको भी ऐसा लगा! भगवान से प्रार्थना की कि जल्दी से सफेद कर डालो! ऐसा पूछा गया इसलिए कहा, आनंद में पूछा गया। साधु डाकू नहीं तो और क्या है? डाकू यानी कि अपने मन को लूट ले, बुद्धि को लूट ले, चित्त को लूट ले, अहंकार को लूट ले। वो बाहर का लुटेरा, ये अंदर का लुटेरा रूखड़।

उर्दू में 'रुखसत' शब्द है। रुखसत का अपभ्रंश 'रूखड़' होगा। और मुझे कहने दीजिए साहब, निजामुद्दीन औलिया, उन्होंने अपने अमुक संवादों में कहा है कि वे एक बार गिरनार गये हैं। साहब, यहां एक बार आना ही पड़ता है! अपने यहां नहीं होता है कि नाथद्वारा में गांठ छोड़ने जाना पड़ता है! वैचारिक जो जगत है, चेतनामय जो जगत है, साधनामय जो जगत है, कोई भी घाटा हो किसी न किसी देह द्वारा, शरीर द्वारा अथवा तो रुह के द्वारा उसे यहां एक परिक्रमा करनी पड़ती है। उसमें एक निजामुद्दीन हैं। ख्वाजा गरीबनवाज-अजमेर, वो तो बाहर से आये हैं। उनकी तमाम विचारधारा मैं स्वीकार नहीं सकता, क्योंकि मेरी स्वतंत्रता है, मेरी निजता है। परंतु उनका गरीबनवाजपना मैं स्वीकारता हूं; अवश्य। और उस गरीबनवाज पर मैंने कथा भी की है, 'मानस-गरीबनवाज।' उसकी दो चौपाई-

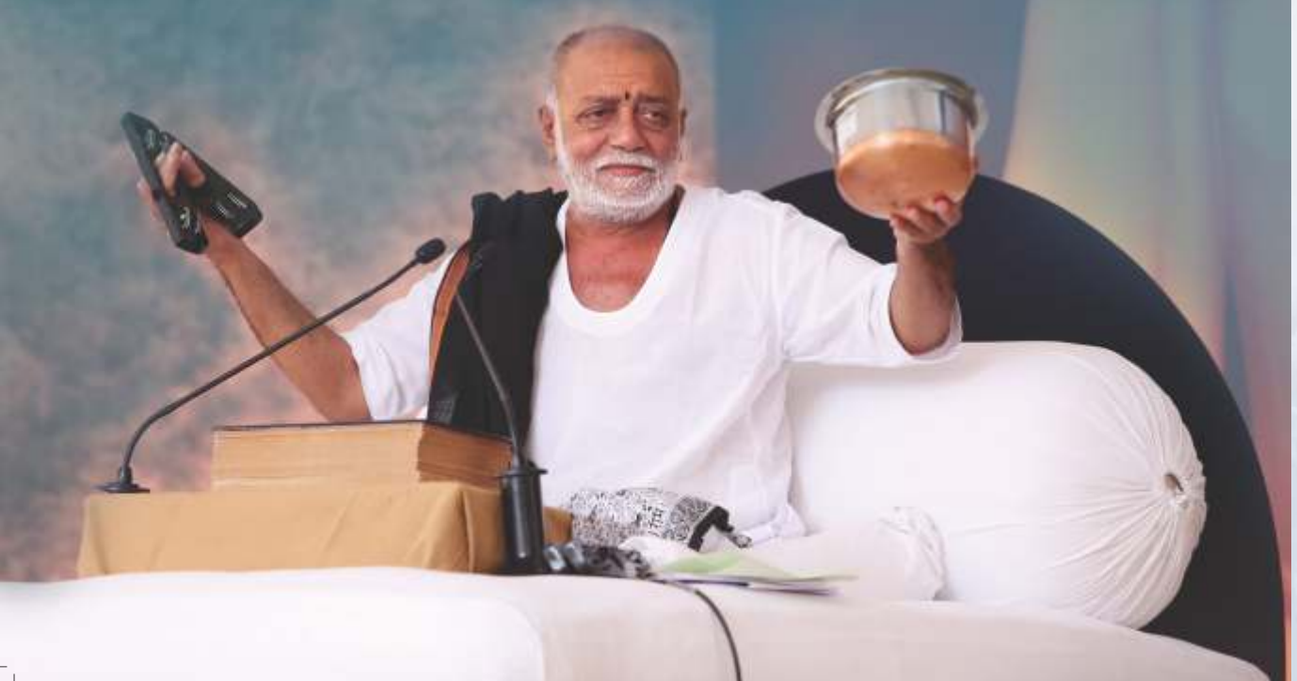

गई बहोर गरीब नेवाजू।
सरल सबल साहिब रधुराजू।।
नाम गरीब अनेक नेवाजे।
लोक बेद बर बिरिद बिराजे।।

कौन गरीबनवाज? अपना सब कुछ लूट गया हो और उसे वापस स्थापित कर दे, सवाया कर दे उसका नाम गरीब नवाज। और साहब कैसा है अपना? सबल हो तो भी सरल। सबल होने के बाद सरल होना कठिन है। अजमेर ख्वाजा गिरनार आये हैं। और अधिक दत्त के पास नहीं रहे, दातार रहे हैं। और ये तो सबकी मौज पर यहां आये हैं सभी। और जलालुद्दीन रूमी, बडी दूर नगरी! ये चैतसिक यात्रा है, जिस्म की नहीं, रुह की यात्रा है। जिस्म की सीमा होती है, रुह की कोई सीमा नहीं। जलालुद्दीन रूमी, उन्होंने अपने सूफीवाद में अपने शागिर्दों के साथ बैठे तब ऐसा कहा कि मैं वहां जा नहीं सकता पर एक ऐसा पहाड़ मुझे खींच रहा है! वो दूसरा कोई नहीं पर अपना गौरवशाली गिरनार था। सभी साधना पद्धति को यहां आना पड़ता है। सभी धाराएं यहां हैं। आप पीना मत प्लीज! आप यहां बैठे-बैठे बीडी पीएं तो भी हवन में बदल जाए। पीना मत मेरे बाप!

साहब! ये भूमि चित्तशुद्धि की भूमि है। यहां बिना प्रयास गिरनार की कृपा से साधक की चित्तवृत्ति का निरोध पता चले बिना होता है और शुद्धि भी होती है। इसलिए यहां सभी चेतनाओं ने दिशाओं से नमन किया है। उसमें निजामुद्दीन ने बहुत काम किया है। दातार जाते, दत्त जाते; दत्त जाते, दातार जाते। वो आदमी रूखड़ की तरह भटके हैं! रखड़े (भटके) वो रूखड़। वह निजामुद्दीन कहता है कि हम जो रुखसत कहते हैं वो रूखड़ है। और रुखसत का अर्थ विदाई करते हैं हम। जिसने छहों छः विकारों को विदाई दे दी। 'रुखसत' और 'रूखड़' जो बीच में 'ख' है वो मेरी दृष्टि से खट्विकार हैं। रुह यानी प्रकाश। ऐसा उजाला हुआ कि उसे विदाई दे दी। उजाले में जिसके विकार विदा हो गये। साधक को खबर भी न पड़ी! और फिर 'ड़' वो तालव्य है। जीभ तालु को छूती है। 'ड़' यानी पता चले बिना होती खेचरी साधना। अपने यहां खेचरी साधना भी है। योगी जो खेचरी मुद्रा द्वारा, साधना द्वारा उपर के तालु को तोड़ते हैं और फिर ऐसा कहते हैं कि इसमें से अमृतधारा बहती है। जैसे ओस की बूंदे फूल पर होती हैं, वैसे 'रूखड़, रूखड़' बोलने से ऐसा सहज आंसू जैसे बिंदु तालु में आते हैं। और उसके कारण कितने अमरत्व पाये हैं। और ये रूखड़ बहुत ही बड़ी अवस्था का नाम है। अपने जैसे बौनों से छुआ न जा सके ऐसा ऊंचे स्थानक की यह बात है। हम नहीं पहुंच सकते और हम जब समझ नहीं सकते हैं तब टीकाएं करते हैं! हम नहीं पहुंच सकते इसलिए परछाईं पकड़ कर चलते हैं! मूलत्व को पकड लें तो परछाईं को पकड़ने की जरूरत न रहे। और साधना क्षेत्र में तो लगभग सबका अनुभव होगा कि जितनी-जितनी वो ऊंचाई पकड़ी है, उतना उसकी परछाई पकड़नेवाला खड़ा होता है! प्रमाण है 'रामचरित मानस।'

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई।
करि माया नभु के खग गहई।।
गहई छाहँ सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगनचर खाई।।

मैं पक्षपात नहीं करता। गिरनार में आप जायें न तो आपको सभी धाराएं मिलेगी। जो साधना करनी हो उसका मार्गदर्शन मिलेगा। माफ़ कीजिए भाई, पर मैं तो इसमें ('रामायण')में जुड़ा हूं। एक 'रामचरित मानस' पकड़ लो तो तमाम साधना के मुद्दे आपको मिलेंगे। यह छाया पकड़नेवाली बात ओलरेडी 'रामायण' में है, 'सुन्दरकांड' में। एक राक्षसी समुद्र में रहती थी। राहु की माँ है। माँ के संस्कार लड़के में आयेंगे ही। राहु में जैसे चंद्र को ग्रहण करने की वृत्ति है, प्रकाश को पकड़कर खा लूं, उसे आगे नहीं आने दूं, वो सब राहु में आया! श्री हनुमानजी महाराज आकाश मार्ग से निकले हैं माँ जानकीजी की खोज में। और भक्ति की तलाश करने के लिए जब-जब किसी ने उड़ान भरी है तब ऐसे तत्त्वने उनकी परछाई पकड़ने की बुद्धिपूर्वक की कोशिश की हैं। हनुमानजी की परछाई पानी में पड़ रही है। सिंहिका नाम की राक्षसी, उसके पास ऐसी विद्या थी कि कोई भी पक्षी उपर से उड़ता वो गोल-गोल घूमता और नीचे गिरता इसलिए वो उसे खा जाती। जल के अंदर इतने सारे जलचर प्राणी हैं पर जलचर को नहीं खाती, गगनचर को खाती है! यह एक विचित्रता है छाया पकड़नेवालों की! उसके साथ तैरते हो उन्हें नहीं खाते पर मुझसे अच्छा कोई लोकगीत गा लिया उसे पकड़ो! मुझसे अच्छी कविता कोई सुना गया! मुझसे अच्छी कथा कोई

कर गया! कोई अच्छा शास्त्रीय गीत गा गया! मुझसे अच्छा लेख कोई लिख गया! पकड़ो, पकड़ो, पकड़ो! तुलसी लिखते हैं, 'एहि बिधि सदा गगनचर खाई।' पर ये तो मेरा हनुमान है। परंतु विद्या थोड़ी-बहुत तो असर करती ही है, फिर वो सद्विद्या हो या मैली विद्या हो, सावधान रहना चाहिए।

रामनाम भजेंगे तो ताकत नहीं कि कोई आपको तोड़ सके। थोड़ी असर तो करेगा ही। वैशाख की दोपहर आती है तो सबको पसीना तो होगा ही पर जो गुरु का ए.सी. फीट किया हो न किसी के घर में तो तकलीफ़ नहीं होगी। और ए.सी. फीट करायें तो गुरु की करायें। यह कंपनी ही पूरी अलग है। ऐ.सी.डिब्बा कब बिगड़ जाये यह नहीं कह सकते! परंतु गुरु का ए.सी. ऐसा ए.सी. है न कि उसका कभी पैसा नहीं भरना पड़ेगा, पावर कट ओफ नहीं होगा, हमें कम या अधिक कुछ करना नहीं पड़ेगा। गुरु को खबर है कि इस चेले को कितनी ठंडक अनुकूल है? उतना ही वो करता है, मेरा चेला कितना पचा सकता है उतना ही वो ठंडक और उष्णता देता है। श्री हनुमानजी पर यह प्रयोग हुआ है बाप! और परछाई जहां पकड़ने गये वहीं हनुमानजी अटक गये। हनुमानजी नीचे आये। सिंहिका को मार डाले। सिंहिका ईर्ष्या और द्वेष की प्रतीक है। हनुमानजी मुझको और आपको सिखाते हैं कि जब तक द्वेष और ईर्ष्या नहीं दूर होती तब तक किसी भी क्षेत्र में मौज नहीं आती। दुनिया तो कहेगी कि आप तोड़ डालते हैं पर अपने को जो

ओडकार आना चाहिए वो नहीं आयेगी। द्वेष समाज में से मिटना चाहिए। इस शब्द पर मेरा हंमेशा भार रहा है।

जिसने रुखसत दे दी वो रूखड़, ऐसा एक तत्त्व। वैसे डाकू जैसे लगे वो बात थी! इसलिए सद्गुरु डाकू ही है, उसने हमें लूटा है। सद्गुरु का दूसरा नाम मृत्यु है। वो पक्षी आता है न विदेश का जल जाता है और फिर उसकी राख से जन्मता है, वैसे गुरुदेव है न वो साधक के सभी पूर्व संस्कारों को जलाकर उसमें से उसे नया जीवन देता है। हमें राख में से जीवित करते हैं। ये भस्म जैसी-तैसी नहीं है जो हमें जीवन बक्षती है। तो, मूलत: मुझको राजभा की कविता कहनी थी-

धरती बोलेने ऐनी सीता आज सांभळे,
वीतेलां दु:खडांनी पूछे वातो रे,
दीकरीनां दु:खडां आज पूछती जनेता
अने हैयामां हेत ऊभरातुं होय,
कोणे रे बेटा तुने वनमां वळावी
अने मारी अबोलीने कोणे रझळावी?

मेरी सीता चूप है बाप! जानकीजी बहुत नहीं बोलती। द्रौपदी बहुत बोलती है। कहां मुखर द्रौपदी और कहां जनक की विदेहराज की कन्या? जहां जरूरत हुई वहीं बोली है। कभी आधी चौपाई ही बोलती है। वो भी तुलसी बुलवाते हैं। प्रमाण-

मरम बचन जब सीता बोला।
हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।

साहब, जहां तक 'रामचरित मानस' का संबंध है, जानकीजी कहीं लीलाओं में बोलती हैं पर राजरानी पद पाने के बाद तो बिल्कुल ही नहीं बोली। मेरी माताएं, पति के घर अमुक पद मिल जाये न फिर बहुत बोलबोल नहीं करना चाहिए। जिसने सिंदूर भरकर सभी मांग भर दी हो, जिसने कोई भी इच्छा आपकी बाकी न रखी हो फिर बहुत बोलना नहीं। मेरी जानकी बहुत बोलती नहीं है। और द्रौपदी बहुत बोलती है! शायद कोख का अंतर है। द्रौपदी अग्निकूखा है, ज्वाला है। और मेरी जानकी धरतीकूखा है। लोकसाहित्य में ऐसा कहा जाता है कि सीताजी बोली होती तो 'रामायण' नहीं होता और द्रौपदी चुप रही होती तो 'महाभारत' न होता। द्रौपदी गजब की है! कृष्ण को भी कडवे बैन सुनाती है! पर उसका जो भरोसा कृष्ण पर था इसीलिए वो कृष्णा कहलाती है। कृष्ण को रोष से, भाव से भजते-भजते गौरवर्ण कृष्णवर्ण होने लगा था। कृष्णा अद्भुत है! दु:शासन जब लाता है उसे। एक वस्त्र में है, तब मुझे रावण अच्छा लगता है। दु:शासन की अपेक्षा रावण अच्छा लगता है। मेरे शंकर का चेला अच्छा लगता है। एक भी गहने को छूआ नहीं! मेरी जानकी ने फेंक दिये गहनें वानरों के पास नीचे। दु:शासन की अपेक्षा दशानन श्रेष्ठ है। खरा है भूतनाथ का चेला, सोमनाथ का चेला। और शिव जैसा कोई गुरु नहीं है। महादेव परमगुरु हैं-

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।
आन जीव पाँवर का जाना।।

बापू, मुझे इतना अधिक हंसना आ रहा है कि मेरा गुरु बनने की लाईन लगी है! कोई कहता है कि मेरे गुरु के गुरु ने उन्हे छाप लगाई है! मैं बहुत बार 'दादा' शब्द बोलता हूं। मुझे बहुत-से महापुरुषों के पास से दिशा मिली है परंतु दीक्षा तो मुझे मेरे गुरु त्रिभुवनदादा ने दी है। मेरा जन्मस्थान तलगाजरडा। मेरा गुरुस्थान तलगाजरडा। मेरा जीवनस्थान तलगाजरडा है। अल्लाह करे, आख़िर जो आये वो भी वही हो! बाकी तो पूरा जगत अपना है। पर छोटे बच्चें ऐसा करते हैं! अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए कहते हैं, मेरे जो गुरु हैं वो बापू के गुरु हैं! इस गिरनार क्षेत्र में सभी जानते हैं कि मेरे गुरु वो मेरे दादा हैं। मेरे पिता के पिता त्रिभुवनदासबापू, जिन्हें हम दादा कहते थे। वो मेरे गुरु हैं साहब! और उनकी पुस्तक मैंने खो दी बचपन के कारण। व्यापारी के यहां वही पोथी होती है वैसी आधी वही जैसी एक डायरी थी दादा के पास। उसमें वे लिखते न थे। उनके पास पेन ही नहीं थी, पेन्सिल भी नहीं! मैंने देखा है साहब! सुबह का तिलक करते वैष्णवी तब छोटा-सा काच था, किसी का बड़ा-सा काच टूट गया हो और छोटा टुकड़ा था। कपाल दिखता था, मुंह कहां देखना ही है? तिलक के लिए कपाल ही देखना है, ऐसे वैराग्य में जी हुई चेतना। उनके ऐसे आधी व्यापारी के वहीं जैसी लाल पुठ्ठा होता है वैसी पुस्तक थी पर वह मुझसे खो गई! आज वो सब मुझे स्मरण में आता है तब प्रसन्न भी होता हूं और रोता भी हूं। उनके चरणों में बैठकर मैं चोपाईयां गाता तब मुझको कहते थे बेटा, इसे संभालना। तिजोरी थी नीले रंग की। उसमें सब संस्कृत की पुस्तकें थी। पर मुझे आनंद ये

होता है कि उस वही पोथी में कुछ लिखा न था। वो जो कोरी किताब अपनी परंपरा में, जो चूक गई थी वो आज संतों के आशीर्वाद से किताब के पन्ने मुझे सूझते हैं, स्मृति आती है। ये कोरे पन्ने हमसे क्या कह गये! कैसे-कैसे संकेत देते हैं! उसमें मुझको ये दु:शासन और दशानन का भेद समझ में आया। अपना बुद्धपुरुष तो एक ही होगा न? हमारी बाजार तो वहीं होगी न? अपने को दूसरा उदार देगा कौन साहब! तो ये गुरु की बात आयी, उनकी कृपा मुझे आनंद देती है।

संक्षेप में मुझे ये बात करनी थी कि जानकी और द्रौपदी में अंतर है। जानकीजी अधिक बोलती नहीं। तुलसीदासजी ने लिखा कि भगवान कभी दुर्वाद बोलते हैं तब भी वे जवाब नहीं देती। समाज में कथा सुनकर सीखना बाप! आपके लिए कोई दुर्वाद बोले न उसे जवाब नहीं देना चाहिए। जवाब देने से उसे बल मिलता है। जवाब नहीं देंगे तो उसे समझ में आ जायेगा! जवाब देते रहे इसकी अपेक्षा माला अधिक न फेरे? इतनी लहर करे। इतनी ऊर्जा क्यों खर्च करनी चाहिए? मैं एक बात समाज को कह देता हूं कि मैं 'गतगंगा' का आदमी नहीं, मैं 'गुरुगंगा' का आदमी हूं। 'गतगंगा' बहुत अच्छी वस्तु है, उसकी महिमा कोई जैसी-तैसी नहीं है। पर उस 'गतगंगा' में नहाऊं, आचमन करूं उसकी अपेक्षा भी मेरा निज शब्द है 'गुरुगंगा।' अब हम 'मानस-रूखड़' पर चर्चा करें-

रूखड़ बावा तुं हळवे हळवे हाल्य जो,
गरवाने माथे रे रूखडियो झळुंबियो,
जेम झळुंबे रण माथे मेघ जो...
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

बाप! रूखड़ अर्थात् मेरी दृष्टि से बैठा हो फिर भी घूम रहा हो। बहुत-से संत देखें, आप उनके स्थान में बैठे ही होंगे, किसी दिन बाहर नहीं जाते। जैसे रमण महर्षि, रमण मेरी दृष्टि में रूखड़ हैं। रमण के एक वक्तव्य में 'रुक्षं रसमय गिरिम् अरुणाचलम् उच्यते।' वह जो रूक्ष रमण जब बोलता है, एकदम सरल ढंग से बोलता है। ऐसा एक श्लोक है, उसमें रूखड़ की परिभाषा है। आप सब मेरे साथ बोलिएगा-

अचलं धीरं शांतं गांभीर्यं स्थितप्रज्ञं।
रुक्षं रसमयं गिरिम् अरुणाचलम् उच्यते।।

भगवान रमण स्वयं, जो अरुणाचल के निवासी हैं। और उसमें 'रूक्ष' शब्द आया इसलिए वे मेरे लिए रूखड़ हैं। पर यहां अरुणाचल की चर्चा करते हुए रमण कहते हैं, वो रूक्ष है, बिल्कुल खाली है, कोई आसाक्ति नहीं। रूखड़ है फिर भी झरना बहता है। अभी गिरनार देखा तो नि:स्तोत्र है और यही गिरनार वर्षाऋतु आये तब कुछ अलग ही है। परंतु उपर से दिखता है रूखड़! जूनागढ से भवनाथ आने पर बीच में रूखड़ हैं। हम सब जिस रूखड़ की बात कर रहे हैं वो पुरातन नहीं पर सनातन है। बहुत-से लोग कहते हैं रूखड़ को फल नहीं आता। रूखड़ जैसे साधु-संतों को फल की आशा ही नहीं होती। वे तो दूसरे को आसरा देते हैं। रूखड़ का सार्वभौम अर्थ तो वृक्ष ही है। झाड़ के अर्थ में वह पुरातन है पर चेतना के अर्थ में वो सनातन है। रमण महर्षि जिस अरुणाचल की व्याख्या करते हैं वो किसी भी पर्वत को लागू पडता है।

मुझे किसी ने लिखा है चिठ्ठी में कि भगवान ने विभूतियों में कहा, 'स्थावराणां हिमालयम्', स्थावर में हिमालय हैं; तो उसमें गिरनार क्यों नहीं याद किया? वो मुरारि नहीं बोला होगा पर ये मुरारि उसका जवाब दे रहा है; कृष्ण को पता है कि हिमालय मेरी विभूति है पर गिरनार स्वयं विभू है। ये अंश नहीं, अंशी है। हिमालय वो गन्ने की एक पोर है, ये पूरा सलंग गन्ना है। गन्ने में ज्यों धीरे-धीरे उपर जायें वैसे आखिरी भाग एकदम फीका लगता है, उसी तरह इस रूखड़ को जिसने धीरे-धीरे अपनाया है उसे अपना जीवन, उसकी सभी आसक्तियां, सब फीका पड़ने लगता है। और जहां अंत में पहुंचता है वहां सब वासनामुक्त हो जाता है। और ऐसे सलंग गन्ने के नीचे हर वर्ष तुलसी विवाह होता है। गिरनार अखंड है। मेरे मन में गिरनार का महत्त्व बहुत है साहब! हर्षद त्रिवेदी की पंक्ति है-

धूणानी सामे धूणो, लागे नहीं कदीये लूणो।
मनना सरोवरे आ आज तडको पड्यो छे कूणो।
गुणना ज गीत गातो ऐवो रूखड़ नथी नगुणो।
ऐणे ज दोट मूकी के साधनामां ऊतर्यो नथी ऊणो।

तो, रमण आपको और मुझको संकेत करते हैं कि गिरनार कैसा है? अरुणाचल कैसा है? याद रखना बाप!

गिरनार स्वयं विभू है। गिरनार बहुत पुराना है। रूक्ष अर्थात् रूखड़। रूखड़ कैसा? अचलम्। मैंने कहा कि बैठा हुआ होगा तो भी घूमता है। ये संत एक जगह बैठ जाते हैं अनुष्ठान में या चौमासे या नवरात्रि में। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे बैठ गये। उसकी चेतना साधना में जिसको-जिसको रस होता है उसे स्पर्श करती ही है। उपर से बैठना पर अंदर से सतत 'चरैवेति' हो उसका नाम रूखड़। अपने को लगता है सोया है पर सतत जागता है वो रूखड़। वो बोलता भी है पर अबोल पर बोलता है तब उसकी तरंगे बोलती हो वो मेरी दृष्टि में रूखड़ है। गिरनार पलांठी मारकर बैठा है। ऐसे किसी अज्ञाततत्त्व का नाम मेरी दृष्टि से रूखड़ है। वो अचल है। धीरम्; धीरज नहीं खोता, शांतम्; काल बीत गया पर कहना चाहिए शाश्वतम्। रूखड़ वो है जो कि शांत हो। कोई भी महापुरुष को परखना हो कि वो रूखड़ है तो किसी भी परिस्थिति में वो शांत रह सकता है। आपको देखना है, संतों में ये होता है। गांभीर्यम्; स्थितप्रज्ञश्च; गौरवशाली होता है वो गंभीर होता है। शंकर के लिए शब्द है 'गंभीर।' 'गीता' के श्लोक का भाषान्तर प्रत्यक्ष देखना हो तो वो गौरवशाली गिरनार है। यह अतिशयोक्ति नहीं है। गिरनार स्थितप्रज्ञ है। अब जो शब्द 'रूक्ष', जिस पर से मुझे ये श्लोक पसंद पड़ा वो रूक्ष है, रुखासूखा है। हमें ऐसा लगेगा कि इसमें कोई रस नहीं है, बहुत-से साधुओं को हम देखें तो ऐसा ही लगता है कि माया से पर हो गये हैं, उदासीन हो गये हैं! पर हम जाते हैं तब हमारे सामने एकाद बार देखकर और सहज मुस्कायें तब 'रसमयम्' होता है वो रूक्ष। ये दोनों तत्त्व एक साथ समाविष्ट करता है, कठिन है। बाहर से सुखना और अंदर से हराभरा रहना ये तो किसी-किसी रूखड़ के भाग में आता है साहब! इनकी टोली नहीं होती। रूखड़त्व में टोली नहीं मिलती! वैसे रासरासेश्वर है। कितने निर्लेप भाव और इन भावों को रमण महर्षि रूक्ष कहते हैं। ये है रूखड़ की परिभाषा। ऐसा है रूखड़त्व। रूखड़ नाम का वृक्ष जो अनेक तरह से उपयोगी बनता हो तो सनातन रूखड़त्व और उसके उपकार गिने नहीं जा सकते, वर्णन नहीं किया जा सकता वैसा है ये 'मानस-रूखड़।' जगदीश त्रिवेदी का पद है रूखड़ पर-

भले लागे सूतेलो, पण जागी गयेलो छे.
रहे संसारमां किन्तु जगत त्यागी गयेलो छे.
नथी परवा अमीरोनी, नथी परवा वजीरोनी,
गरीबोनी सेवामां ज रूखड़ लागी गयेलो छे।

अब भगवान शंकर का लग्न कराना है और फिर रामजन्म कराना है क्योंकि विवाह नहीं करें तब तक जन्म नहीं होगा। श्रद्धा और विश्वास एक न हो तब तक रामजन्म नहीं होता। कथा के क्रम में गतकल हमनें रामनाम की महिमा की बात की थी। तुलसीदासजी 'रामचरित मानस' की सनातनता प्रस्तुत करते हैं कि यह जो ग्रंथ है उसकी रचना सब से पहले शिव ने की। अपने 'मानस' में रखी इस कथा को। वाल्मीकि इस रामकथा के आदि कवि हैं, जब कि शिवजी इस कथा के अनादि कवि हैं। इस कथा की प्रवाही परंपरा कैलास से शुरू हुई और शिव द्वारा यह कथा कागभुशुंडि को मिली और उन्होंने गरुड को सुनाई। उसके बाद यह कथा पृथ्वी पर आई। इसमें प्रयाग में जहां परमविवेकी याज्ञवल्क्य महाराज ने भरद्वाज के समक्ष इसका गान किया। गोस्वामीजी कहते हैं कि इस कथा का बारबार श्रवण करने पर गुरुकृपा से मेरे 'मानस' में बद्ध हुई और इस कथा को लोकभाषा में गढ़ी। संवत् सोलह-सौ इकत्तीस की

मुझे इतना अधिक हंसना आ रहा है कि मेरे गुरु बनने की लाईन लगी है! कोई कहता है कि मेरे गुरु के गुरु ने उन्हें छाप लगाई है! मैं बहुत बार 'दादा' शब्द बोलता हूं। मुझे बहुत-से महापुरुषों के पास से दिशा मिली है परंतु दीक्षा तो मुझे मेरे गुरु त्रिभुवनदादा ने दी है। मेरा जन्मस्थान तलगाजरडा। मेरा गुरुस्थान तलगाजरडा। मेरा जीवनस्थान तलगाजरडा है। अल्लाह करे, आख़िर जो आये वो भी वही हो! बाकी तो पूरा जगत अपना है। पर छोटे बच्चे ऐसा करते हैं! अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए कहते हैं, मेरे जो गुरु हैं वो बापू के गुरु है! इस गिरनार क्षेत्र में सभी जानते हैं कि मेरे गुरु वो मेरे दादा है। मेरे पिता के पिता त्रिभुवनदासबापू, जिन्हें हम दादा कहते थे। वे मेरे गुरु हैं साहब!

रामनवमी के दिन भगवान त्रेता में जब जन्म लिए तब त्रेता में योग था ऐसा योग, लगन, ग्रह, बार, तिथि थे उस दिन 'रामचरित मानस' का प्रकाशन किया। ज्ञानघाट पर शिव पार्वती को सुनाते हैं। उपासना का घाट, जहां कागभुशुंडि गरुड को सुनाते हैं। कर्मघाट, जहां याज्ञवल्क्य भरद्वाज को सुनाते हैं। शरणागति का घाट जहां तुलसी अपने मन और संतसभा को कथा सुनाते हैं। तुलसी अपनी चौपाई द्वारा हमें प्रयाग ले जाते हैं जहां कुंभ लगता है। भरद्वाजजी ने प्रश्न किया है कि रामतत्त्व क्या है? और याज्ञवल्क्य मुस्कुराये, बोले कि महाराज, आप राम के अनुरागी हैं, रामतत्त्व के जानकार हैं फिर भी आपने राम की गूढ लीलाओं को जानने के लिए मूर्ख जैसा प्रश्न किया है! आप जैसे श्रोता मिले तो मैं जरूर रामकथा गाऊंगा। और याज्ञवल्क्य महाराज ने कथा का आरंभ किया। कथा पूछी है राम की और आरंभ किया है शिवचरित्र से। ये था सेतुबंध। राम तक पहुंचने के लिए शिव द्वार हैं और शिव का ही वानराकार हनुमान हैं। और उन्हें हमने द्वार ही गिना है।

भगवान शिव सती को लेकर एक बार त्रेतायुग में कुंभज ऋषि के यहां जाते हैं। सती कथा में रस नहीं लेती। वापस आते समय रामचरित्र पर संदेह हुआ। परिणाम ये आया कि सती सीता का रूप लेकर परीक्षा करने जाती हैं और निष्फल होती हैं। आखिर में शिव ने सती का त्याग किया। शिव ने समाधि ली। वर्षों बाद समाधि से मुक्त हुए। सती सन्मुख आयी। उसमें दक्ष की कथा आयी। दक्ष यज्ञ कराते हैं। सती मानी नहीं और सती ने योगाग्नि में देह समा लिया। यज्ञ में समाधि के समय सती ने ईश्वर से मांगा था कि जन्म-जन्म तक मुझे शिव के चरण में ही अनुराग रहे, मुझे वापस स्त्री का ही अवतार मिले। और सती हिमालय के घर पार्वती के रूप में आयी। समृद्धि तो बढ़ी पर न बुलाये ऋषिमुनि भी घर आने लगे। उसमें एक दिन नारदजी वीणा लिए पधारे। हिमालय ने पूछा कि देवर्षि, मेरी पुत्री का दोष-गुण बताये। तब नारदजी ने शिवत्व के लक्षण कहे। नारदजी ने कहा कि आपकी पुत्र तप करेगी तो शिव मिलेंगे। पार्वती ने बहुत तप किया और वरदान मिला। भगवान ने शंकर को विवाह का आदेश दिया। शंकर ने हां कही। भगवान शंकर पार्वती के प्रेम को याद करके पुन: समाधि में लीन हुए।

उस समय ताडकासुर नाम का राक्षस हुआ। सबको बहुत त्रास दिया! उसका निधन कैसे होगा यह जब ब्रह्मा से पूछा गया तब कहे कि शंकर का पुत्र ही उसे मार सकेगा। अब देवताओं, आप उनकी समाधि तोड़वाओ तो विवाह की व्यवस्था में करूं। सभी देवता शंकर के पास आये और प्रशंसा करने लगे। शंकर ने कहा, मिथ्या प्रशंसा न करे! मैं आप लोगों को पहचानता हूं। आप देव हैं, मैं महादेव हूं। जो काम हो उसे कहिए। ब्रह्मा ने कहा, सभी देवता मेरे पीछे पडे हैं। ये कहते हैं कि किसी का लग्न नहीं आता! इसलिए आप विवाह करें! शंकर ने कहा, आप कहें और मैं घोडे पर चढ़ जाऊं ऐसा नहीं हूं! मेरे प्रभु ने मुझे आदेश दिया है कि आप पार्वती का पाणिग्रहण करें। इस लिए मैं विवाह करूंगा।

नजदीकी गणों ने शिवजी का शृंगार किया। जटा का मुकुट बनाया। सर्प का कुंडल बनाकर लगाया। चिताभस्म का लेप लगाया। मृगचर्म कटिभाग में लपेटा। तलवार की जगह त्रिशूल लिया। और फिर नंदी की सवारी पर उल्टे बैठे! शंकर ने मेसेज दिया कि नंदी ये धर्म का प्रतीक है। और धर्म के स्थान पर बैठने के बाद जिसका जीवन टर्न न ले उसका कोई अर्थ नहीं। जीवन में मोड आने चाहिए, इसलिए शंकर ऐसे बैठे हैं। भूत-प्रेत बारात में शामिल है। और बारात हिमालय प्रदेश पहुंची है। भगवान हिमालय द्वार पर आते हैं। महारानी मैना वरराजा के परछन के लिए आरती ले आती हैं और शंकर का रौद्र रूप देखकर हाथ से आरती गिर जाती है और बेहोश हो जाती हैं। यहां सप्तर्षि नारद को पता चला कि महारानी मैना मूर्छित हो गयी हैं। और जब गृहस्थ को समस्या आती तब ऐसे साधु ही काम में आते; समस्याओं का समाधान करते और साधु सेतुबंध बांधते थे। नारद कहते हैं कि तुम मानती हो कि पार्वती तुम्हारी पुत्री है परंतु मैना, तुम पार्वती की पुत्री हो। ये जगदंबा है, अखिल ब्रह्मांड की माँ है। तुम्हारे घर में शक्ति और तुम्हारे दरवाजे पर शिव है। यह मुझको और आपको उपदेश है कि हमारे घर में ही शक्ति और हमारे द्वार पर ही शिवतत्त्व आकर खड़ा होता है पर जब तक नारद जैसा रूखड़ हमें बोध नहीं देता तब तक हमें समझ में नहीं आता है। नारद रूखड़ ही हैं। हरेक जगह उनका परिभ्रमण हैं।

सद्गुरु शिष्य को परवश नहीं करता और सच्चा शिष्य गुरु को बंधन में नहीं डालता

'मानस-रूखड़', जिसे मैं और आप कुछ विशेष पहचानने की कोशिश कर रहे हैं। रोज बार-बार स्पष्टता करता हूं कि यहां तथाकथित रूखड़ की चर्चा नहीं है। ये एक अवधूती अवस्था की चर्चा है। परमहंसीय पद या तो प्राप्त कर गये ऐसे रूखड़ों की चर्चा है अथवा तो उस मार्ग पर चढ़ी हुई ऐसी एक रूखड़ी चेतनाओं की चर्चा यहां हो रही है। तुलसीदासजी की जिस पंक्ति का आधार मैंने लिया है इस कथा में-

साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहिं जग जस पावा ।।

यहां साधु और साधुता की व्याख्या आश्रम और वेशविशेष से नहीं की गई हैं पर्टिक्युलर इन पंक्तियों में। आश्रम और वेश ये हमें बहुत ही प्रेरणा देते हैं, क्योंकि आज तमाम साधु-संतों के आश्रम में उसमें अधिष्ठाता साधना करते हैं। साधना करवाते हैं और साथ ही साथ देश-काल के अनुसार अनेक सेवाकीय प्रवृत्तियों में आश्रम लगे हुए हैं। इसलिए आश्रमों की अपनी एक विशेष पहचान है। यह आवश्यक है। वेश भी हमें बहुत मार्गदर्शन देता है। साधक वस्त्र में आत्मसात् हो जाये तो वस्त्र को वृत्ति बनते देर नहीं लगती। एक वृत्ति निर्मित हो रही होती है; इसलिए वेश भी हमको मार्गदर्शन देता है, हमें गाईड करता है। अमुक वेश धारण करने के बाद हम जैसे-तैसे घुम नहीं सकते। अमुक वेश धारण करने के बाद हम जैसा-तैसा बोल नहीं सकते। यद्यपि साधु स्वतंत्र है। उसका भजन स्वतंत्र है। फिर भी लोकमंगल, लोकरुचि को कहीं ठेस न लगे इसीलिए आश्रम और वेश इन दोनों की बहुत ही महत्ता है। फिर भी तुलसी जब यहां साधुता की बात करते हैं तब आश्रम और वेश द्वारा उसे प्रस्थापित नहीं करते। उसे एक तीसरा रूप देते हैं। आश्रम और वेश खूब ही महत्त्व के हैं। परंतु यहां साधु की कपास के फूल के साथ समानता की है। और पूरे 'रामचरित मानस' में कपास का उल्लेख दो बार ही आया है। एक 'बालकांड' में और एक 'उत्तरकांड' में। इसके सिवाय कपास का वर्णन तुलसी करते नहीं हैं। आदि और अंत में इस कपास तत्त्व की स्थापना गोस्वामीजी ने की है। 'बालकांड' में जहां कपास का वर्णन है वहां कपास का उपयोग वस्त्र बनाने के लिए है कि जो वस्त्र बनने के बाद हमारे शरीर के छिद्रों को ढंकता है। साधु कौन? कि उसकी शरण में आये हुए के सभी छिद्रों को ढंके और स्वयं जिसकी शरण में हो उस परमात्मा को जो खुला कर दे; हमारे समक्ष जैसा है वैसा प्रस्तुत करे और हमारे दोष को वो कपास का वस्त्र बनकर ढंक दे।

तो 'बालकांड' में रूखड़ यानी एक कपास का पौधा। 'उत्तरकांड' में फ़िर कपास का वर्णन तुलसीदासजी करते हैं तब वहां वस्त्र का संदर्भ नहीं है पर वहां दीप प्रगटित किया है। वहां प्रकाश है। साधुता के दो ही काम है। एक तो हरि को छोटे से छोटे आदमी के सामने निर्वस्त्र करना, ले, ये तेरा परमात्मा! नकद ईश्वर देना। और वो जैसा है उसे स्वीकार करना, वह चाहे जैसा है। तुम कपास के फूल हो तो उसे ढंको। परंतु 'उत्तरकांड' में पूरी गति होती है। जब साधक इस तरह वापस जब अंतिम शिखर पर चढनेवाला हो तब वो शायद दिगंबर भी होंगे। वो इतनी ऊंचाई पर गया है वहां शायद उसके पास कोई ऐसा आता भी नहीं कि उसे ढंकने की जरूरत पड़े। तब उसे एक ही काम करना है, उसे दीप प्रगटित करना होता है और जिसे मेरे तुलसी ज्ञानदीप कहते हैं। और वहां फिर तुलसी कपास का वर्णन करते हैं-

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।।

बाप! तीन हरे पत्तों की जो उसकी पेकिंग है! कुदरत की पेकिंग बहुत ही सुंदर है! और उसमें से कपास का शुभतत्त्व फूल बाहर निकलता हैं जो फल है। इसका अर्थ जिस तरह समझ में आया है संतों की कृपा से वो ये कि कपास का फूल तीन गुणों में दबा हुआ है-सत्त्व, रज और तम। साधु वो भी पृथ्वी पर आता है तब अपने जैसा ही आता है। वो कहीं विशिष्ट ढंग से नहीं आता। परंतु साधुता तभी समझ में आयेगी कि तीनों गुण को तोड़कर, इस तरह उसे हटाकर, तीनों गुण में से इस तरह धीरे-धीरे उपर उठता है कि उसे पता भी नहीं चलता कि सत्य कब निकल गया! रजस कब निकल गया! तमस कब निकल गया! और 'उत्तरकांड' का वो दीप तो बहुत कठिन है। वहां तो तीन अवस्था की चर्चा है। हम साधुओं को केवल उपर-उपर से देखते हैं इसलिए रूखड़ समझ में नहीं आता। मैं बार-बार कहता हूं कि तथाकथित रूखड़ की यहां व्यासपीठ के उपर एन्ट्री ही नहीं है। यहां तो मेरे और आपके उपर कृपा और अहेतु अनुग्रह से जो चमक रहे हैं उन अवधूती तत्त्वों, उन रूखड़ो को पग लगने आया हूं। और उसमें जब मैं 'रामायण' के भरत को देखता हूं और 'श्रीमद् भागवत्' के जडभरत को देखता हूं तो मेरे समक्ष दो रूखड़ खडे होते हैं। जबरदस्त दो रूखड़ खड़े होते हैं। एक 'रामचरित मानस' का भरत और दूसरा 'भागवत' का जडभरत। 'रामचरित मानस' का भरत थोड़ी मुश्किल पड़ेगा। वो रूखड़ जडभरत भी समझने में मुश्किल पड़ेगा परंतु फिर भी उसके व्यवहार कुछ ऐसे हैं कि उसका रूखड़पना तुरंत हमारी समझ में आ जाये। 'रामायण' के भरत को समझना बहुत ही कठिन है। भरतजी 'रामायण' में जितना गुस्सा करते हैं इतने खराब शब्दों में गुस्सा किसी ने नहीं किया। भरत को मुझे कैसे गुणातीत कहना? और फिर भी भरत रूखड़ है। भरत परमसंत हैं। तीर्थराज में तो कहा गया-

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू।
राम चरन अनुराग अगाधू।।

साधुता की जितनी कसौटी होती है उसमें से मेरा भरत पार उतरा है। भरत बहुत गुस्सा करता है और फिरभी 'रामायण' ऐसा कलहता है, 'सब बिधि साधु।' इन तीनों रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण में से तो भरत निकल गये हैं। हमें दिखता है कि उन्होंने राज्य छोड़ दिया। अर्थात् रजोगुण का हरा पत्ता तो हट गया। सत्त्वगुण का बंधन भी भरतजी में नहीं है परंतु तमोगुण तो इस आदमी में भरपूर है। इन्हें साधु कैसे कहेंगे? इतनी सारी गालियां बोलता है भरत! 'जब तें कुमति', हे कुमति, हे कुबुद्धि! अपनी माँ को उसका बेटा कुमति कहे ये बड़ी गाली है! हे कुमति, जब से तुझमें कुमति आयी है, तेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो गये? हे कुमति, हे कुबुद्धि, हे कैकेयी कन्या, तुने ये क्या किया? और इसके बाद गाली आप देखें, वरदान मांगते हुए तेरे मुंह में कीडे नहीं पड़े? तेरी जीभ के टुकड़े न हो गए? ये तूने क्या किया? भरत कोप में ऐसी गालियां बोले हैं!

आदमी क्रोध करता है उसके दो कारण 'रामायण' में हैं। एक तो आदमी अपने आप को धनवान मानता है, आदमी अपने आप को बहुत बलवान मानता है, आदमी अपने आप को बहुत विद्यामान मानता है, रूपवान मानता है और फिर उसके अहंकार को चोट पहुंचती है इसलिए वो क्रोध करता है। विद्यावालें को ऐसा लगता है कि मेरी ओर संदेह करता है? प्रश्न करता है? धनवान को क्रोध आता है। दूसरा कारण है, द्वैतबुद्धि से क्रोध जगता है। ये मैं और वो तू। इसमें से क्रोध जन्मता है। दो हथेलियों को

घीसेंगे तब उष्णता पैदा होती है। चंदन की दो लकडियां घीसती हैं तो अग्नि प्रगट होती है। द्वैत के बिना क्रोध नहीं जागता। तो भरत में अहंकार है इसलिए उन्होंने क्रोध किया? भरत द्वैतवादी हैं? 'रामायण' को देखने से निश्चित होता है कि उनमें अहंकार नहीं है। उनमें द्वैत नहीं है। उन्हें समस्त जगत राममय दिखता है। द्वैतवाला भाग उड़ जाता है। अहंकारवाला भाग उड़ जाता है तो फिर भरत ऐसी गलतियां क्यों बोले हैं? वे तीनों गुण से मुक्त क्यों न हो सके? पर बाप! मुद्दा मुझको और आपको यह समझना है कि साधु की केवल बोली जानकर निर्णय मत करना। चरित्र गुण-अवगुणयुक्त होगा पर अभिनय वो केवल कला ही होती है, उसमें गुण-अवगुण कहीं आते ही नहीं। बहुत से महात्माओं को आप देखोगे अपनी हयाती में थे। अब नहीं अथवा तो होंगे हमें मालूम नहीं। पर गाली ही बोलते थे और फिर भी हम उनके भीतर बहुत नजदीक जाकर देखे तब ऐसा लगा कि उनके जैसी करुणा किसी की नहीं है। हमें ऐसा लगता है कि ये भाषा? ऐसा बोला जाता है? कोई संन्यासी लकड़ी लेकर निकले और ऐसा कहे कि तू हट जा, तो उसका तिरस्कार मत समझ लेना। उसके पीछे कारण क्या है उसे खोजना।

खास कर के युवान भाई-बहनों, मैं समझता हूं कितने तथाकथित धर्मों ने पाखंड आयोजित किया है इसलिए इस से आज की युवानी ऊब गई है। पर फिर भी थोड़ी राह देखो। अभ भी साधु हैं। अभी जगत में आकाश को आधार दे ऐसा कोई है। परमहंस के पद को छू लें ऐसे अभी रूखड़ हैं। भरत ऐसा बोले इसलिए वे संत नहीं हैं, ऐसा निर्णय मेहरबानी करके न कीजिएगा। 'रामायण' में तो ऐसा लिखा है कि साधु उसका नाम है कि जो कठोर वचन बोले ही नहीं। आपको प्रमाण दूं-

सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।
परुष बचन कबहूं नहिं बोलहिं।।

साहब, जिसे सचमुच वेश से या आश्रम से या वेश बिना या किसी भी तरह से ऐसी साधुता को पकड़ लेना हो वो एक-एक गुण ऐसे गुरु की कृपा से उतारे तो वो बन सकता है, ऐसा है साहब! इतना ही करना है बाप! सम का अर्थ है शांति। युवानों, आपकी परीक्षा का समय है। अभी पूरे देश में परीक्षा का वातावरण चल रहा है। ऐसे समय में अपने मन को शांत रखिएगा। मैं पास नहीं होऊंगा, अनुत्तीर्ण होऊंगा तो भादर डेम का विचार न करें कि मैं आत्मघात कर डालूंगा। नहीं, पहले से मन को तैयार करोगे, शांत रखोगे, निर्मल रखोगे तो अनुत्तीर्ण होने की ग्लानि नहीं होगी और पास होने का गर्व नहीं होगा।

बाप! अपने से पाला जा सके इतने नियमों को पालना चाहिए। एक 'हनुमानचालीसा', दो 'हनुमानचालीसा', पांच अथवा तो गुरु ने मंत्र दिया हो उसका थोड़े नियम का मैं थोड़ा स्वाध्याय करूं। आप सब करते ही हैं। थोड़े नियम उडान भर लेते हैं। रन-वे जहां तक पूरा न हो वहां तक ऐरोप्लेन को भी उड़ने की मनाही है। उसे पूरा रन-वे पूरा करना पडता है। युवान भाई-बहनों, थोड़ा संयम और नियमों का रन-वे पूरा होने दीजिए और फिर अचानक गुरुकृपा से लिफट हो जायें। तो भरतजी तो इतना अधिक कठोर वाक्य बोले फिर भी वे साधु हैं। सर्व प्रकार से साधु हैं। रूखड़तत्त्व समझना बड़ा कठिन है। अपने माप से नहीं मपता है और इसीसे भरतजी उस ढंग से नहीं समझ में आते। तो अभिनय करने में एक आदमी को जो संवाद आये हो, वो खराब में खराब वाक्य बोलता होता है पर फिर उसके जीवन के व्यवहार में कोई ऐसा नहीं होता। और संवादों में बहुत अच्छा सब बोलता हो पर वास्तविक जीवन में फिर अच्छा हो भी नहीं! मतलब किसी के विषय में निर्णय करने से पहले बहुत विचार करना पड़ता है। तुलसीदास एक अलग ही तरह से रूखड़ को पेश करते हैं। आश्रम, वेश ये सब ही जगत में जरूरी हैं। इनके बगैर नहीं चलता। नहीं तो ये सब छिन्न-भिन्न हो जाता। परंतु यहां रूखड़ की परिभाषा कपास के फूल के साथ विष्टि रूप से उसकी साधुता का दर्शन हमें कराते हैं।

ठाकुर रामकृष्ण परमहंस ऐसा कहते थे कि भक्ति के दो मार्ग है। कल ही एक श्रोता ने मुझे लिखा था कि बिल्ली उसके बच्चे को पकड़ रखे और एक बंदरी का बच्चा उसकी माता को पकड़े रखे। ये दो विद्या दिखती है। बिल्ली उसके बच्चे को पकड़ रखती है। एक आश्रम ऐसा है कि माँ उसे पकड़ रखती है एक घर से दूसरे घर; उसके मुंह में बच्चें को पकड़ी होती है। और फिर भी दांत नहीं लगता, खून नहीं निकलता। बहुत बचाकर ले जाती है। बंदरी उसके बच्चे को नहीं पकड़ती। बच्चा ही उसकी माँ को पकड़े रखता

है, चिपका रहता है। या तो भगवान हमें पकड़ रखता है और या तो हम भगवान को पकड़े रखते हैं, जिसको जो अनुकूल होता हो वो। मुझे आपको तीसरा मार्ग कहना है। न इसे उसको पकड़ना है या न उसे इसको पकड़ना है। केवल ताकना है। यह एक तीसरा मार्ग है। इसमें कोई भी किसी को परवश नहीं करनेवाला। सद्गुरु किसी दिन शिष्य को परवश नहीं करता। और सच्चा शिष्य किसी दिन गुरु को बंधन में नहीं डालता। आश्रित गुरु को नहीं बांधता। गुरु बंधेगा ही नहीं। ये तो उसका कोमल स्वभाव होता है इसलिए ऐसा रखता है साहब! बाकी गुरु बंधेगा ही नहीं। उसे कौन बांधेगा? ईश्वर नहीं बांध सकता उसे दूसरा कौन बांध सकता है? और जो गुरु है, बुद्धपुरुष है, वो किसी को बांधेगा नहीं। यहां जो 'झळुंबियो' शब्द है ये बीच का रास्ता है। इसमें कोई एक-दूसरे को टच नहीं करता। किसी बुद्धपुरुष का आश्रित बनें तब हमें ऐसा लगता है कि मेरा गुरु मेरे उपर नजर रखे है।

बाप! निझामुद्दीन ओलिया ने अमीर खुशरो से कहा कि मेरा शरीर है न बेटा, कल गिर जायेगा। ये पंचभूत शरीर है। तेरी जो मोहब्बत है अपने पीर की तरफ पर ये काया तो कल चली जायेगी। इसलिए तुम अकेले रहने का सीख जाओ। साहब, अमीर खुशरो की आंख में आंसू आ गये कि पीर, तुम्हारा आदेश वो मेरे माथे पर होना चाहिए। तुम्हारा आदेश तोडूंगा तो मैं अमीर कैसा? परंतु तुम मुझको अकेले रहने को कहते हो पर तुम मुझे अकेले रहने दो तब न ! मैं जहां जाता हूं वहां रूखड़िया चमकता होता है! मैं जहां जाता हूं वहां तुम्हारी पादुका की पीछे-पीछे आवाज़ होती हो ऐसा लगता है!

तळेटी जतां ऐवुं लाग्या करे छे।
हजी क्यांक करताल वाग्या करे छे।

-मनोज खंडेरिया

बुद्धपुरुष किसी भी दिन हमें अकेले नहीं रहने देगा साहब! पर वो बंधन में नहीं डालेगा। और छोटी-बडी वित्तजा, तनुजा, मानसी, तन-मन-धन से जो सेवा करता है वो गुरु को बांधने की असफल कोशिश न करे क्योंकि उसमें असफल ही रहेंगे। ये जो 'झळुंबवुं' शब्द है ये बहुत ही महत्त्व का है। ये एक मेरी दृष्टि से तीसरा मार्ग है। गुरु तो मोक्ष का दूसरा नाम है। गुरु तो मुक्ति का पर्याय है। कोई शिष्य अपनी सेवा से गुरु को बंधन में डाले और न कोई गुरु अपने शिष्य की निजता को परवश करे। इसीलिए यहां एक तीसरा मार्ग निकला, झळुंबवुं।

रूखड़ बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो...

कम से कम नौ दिन में ये लोकगीत कहें, पद कहें इसमें जितने रूपक हैं उनकी तो चर्चा कर लूं। इसमें इतने रूपक हैं। हरीन्द्रभाई दवे ने इसमें साधना की उत्तरोत्तर दशा का वर्णन किया है और अंत में 'जेम झळुंबे धरती माथे आभ जो', इसमें हरीन्द्रभाई के शब्दों में कहूं तो पार्थिव तत्त्व के उपर अपार्थिव तत्त्व है। अंतिम अवस्था को हरीन्द्रभाई ने ऐसे मूल्यांकन किया है कि आकाश धरती के उपर स्वाभाविक झुकता है। नाशवंत के उपर शाश्वत झुकता होता है। पृथ्वी तो कभी भी नाश होनेवाली है और आकाश वो वैसे का वैसा रहनेवाला है। ऐसा क्रमशः साधना के चरण बताए हैं। पर यहां 'जेम झळुंबे मोरबी उपर नाग जो' पंक्ति है। मुरली तीन, एक कृष्ण की मुरली और एक अपने यहां मालधारी लोग पावा बजाते हैं, मुरली बजाते हैं वो और तीसरी वादी की मुरली। कृष्ण मुरली बजाते हैं तब कौन-सा नाग ताकता है? शेषनाग? तीन प्रकार के नाग यहां हैं। तलगाजरडा को जो दिखता है वो ये है। एक तो मेरे गोविंद की मुरली कि जिसमें गोपियां नाचती हैं, समस्त चराचर उसमें लीन हो जायेगा, तदाकार हो जायेगा वो तो है ही। पर नाग ताकता है, ऐसा जब कहा तब वो नाग शेषनाग है? कालीयनाग है? शेषनाग नहीं, कालीयनाग है। पूरी भागवतीलीला है इसके पीछे! पर उसमें कालीयनाग वहां ताकता है। अपना कोई मालधारी गाय, भैंस चराता हुआ पावा बजाये अथवा तो बांसुरी बजाये या मुरली बजाये उस पर कौन रीझता है? वो कौन-सा नाग है? नाग के बहुत से अर्थ होते हैं। नाग का एक अर्थ होता है हाथी। हाथी के मोती की माला को नागमणि माला कहते हैं। नाग का एक अर्थ सीमाएं या दिशाएं होता है। मालधारी का पुत्र जिस दिन मुरली बजाता होगा तब सीमाएं रीझती होंगी। और तीसरा, वादी की मुरली बजती है तब भूमिनाग रीझते हैं। तुलसीदासजी ने 'भूमिनाग' शब्द का प्रयोग किया है। 'भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी।' धरती को तो शेषनाग धारण करते हैं। पृथ्वी के संपोले धरती को धारण नहीं कर सकते! मैं पूरे समाज को कहना

चाहता हूं कि भगवान कृष्ण ने कालीनाग को उसके मस्तक को मंच बनाकर और जो कथ्थक किया है और कालीनाग को नाथा है और फिर वे नागीनें बिलाप करती हैं! और उसमें जो पंक्ति नरसिंह मेहता बोलते हैं, अद्भुत है। छसौ वर्ष के बाद भी हमारे लिए प्रासंगिक लगती है।

नागण सहु विलाप करे छे नागने बहु दुःख आपशे;
मथुरानगरीमां लई जशे पछी नागनुं शीश कापशे।
बेउं कर जोडीने वीनवे: स्वामी! मूको अमारा कंथने;
अमे अपराधी कांई न समज्यां, न ओळख्या भगवंतने।

युवान भाई-बहनों, अपने बुद्धपुरुष को या किसी परमतत्त्व या अपने उपर सतत रीझ रहे तत्त्व को हम पहचान न सकें और यदि कोई भूल कर बैठें तो यह पंक्ति बोलना कि 'अमे अपराधी कांई न समज्या, न ओळख्या भगवंतने।' बाप! हम आपको पहचान न सके! अर्जुन की आंख में आंसू की बूंदे थी और फिर 'गीता' में कहा हैं, हे कृष्ण, मुझे तो ऐसा कि तुम्हारे साथ हम सोते और मजाक करते थे, एक-दूसरे के हाथ में से कवल छिन कर खा जाते थे! सखा मानकर मजाक करते थे! हे कृष्ण, हम तूकार करते! हे केशव, हे यादव, हे गोविंद, माफ़ कीजिए! तुम्हारी महिमा हम न पहचान सके! हमारा तो प्रमाद था! हमारी वो मूढता थी! हमारा वो अहंकार था कि हम इसे पहचानते हैं! कोई परमतत्त्व नहीं पहचाना जाता साहब! अपने जैसों से पहचाना ही नहीं जाता! महापुरुषों की बात अलग है।

अपने यहां ऐसा कहा जाता है कि सर्प को कान ही नहीं हैं; तो सुने बिना वो झुमेंगा क्यों? वादी मुरली को इधर से उधर करता है इसलिए वो नाग देख देख कर हिलता है। हो सकता है, बन सकता है। पर मुझे ऐसा लगता है कि 'सुने बिनु काना'; उस परमतत्त्व का नाम रूखड़ है जो कान बिना सुनता है। और जब कोई ऐसी मुरली बजाएगा फिर चौपाई की मुरली हो, दोहा की मुरली हो, छंद की हो, श्लोक की हो, सुगम संगीत की हो, गज़ल हो, शास्त्रीय गीत हो, लोकगीत हो, सूर में गाया जाता कोई मंत्र हो, सरजू हो या सामवेद हो, कभी जिसके कान नहीं है ऐसा एक परमतत्त्व है वो उसके उपर रीझता है। वो परमतत्त्व उसे सुनता है। कान को दिशा भी कहा जाता है। दिशा का एक अर्थ होता है कान। तुलसी कहते हैं, ये दस दिशाएं हैं ये परमतत्त्व के कान हैं। यानी श्रवण बिना जो सुनता है। इन्द्रियों के विषय से भी जो मुक्त है और इन्द्रीयातीत है। ऐसे बहुत ऊंचे तत्त्व का नाम यहां रूखड़ है। तथाकथित रूखड़ की चर्चा यहां है ही नहीं। सतत नकार रहा हूं। तो पहले तो गौरवशाली के उपर रूखड़िया जगमगाया, फिर थोड़ा संगीत आया कि मुरली बजती है और कोई परमतत्त्व डोलता है। थोड़ी रसिकता आयी। थोड़ा अपने को नजदीक पड़े ऐसी एक सीढ़ी। यहां नीचे से उपर चढ़ता नहीं है। उपर से नीचे आना है। धीरे-धीरे वो परमतत्त्व हमारी अंगूली पकड़कर हमारे प्रतीक हमारे जीवन के सभी दृश्य हमारे सामने रखा और हमें रूखड़ का अनुभव कराना चाहता है।

जेम झळुंबे कूवा माथे कोस जो।
गरवाने माथे रे रूखडियो झळुंबियो।

साधना का तीसरा चरण है कि जिसे रूखड़ की उपलब्धि हुई है, जिसे सद्गुरु मिला है वो फिर जो उसने बहुत ही गहरी साधना करते-करते जिस परमतत्त्व को पाया है उसे अपनी औकात के अनुसार वो सबको बांटता है, खेत खेत में पानी पहुंचाता है। ये सब त्यागी संत-महात्मा केवल परमतत्त्व को पाने के लिए सब छोड़कर निकल गये वे वापस आश्रम कें बहाने या सेवा के बहाने हमारे बीच किस लिए आये? कारण कि उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें जो मिला है गहराई में से, उन्हें जो कुआं में से मिला है, वो अब जो बेचारे साधना नहीं करते, केवल क्यारी पनियाते हैं, केवल पानी बहाने के सिवाय कुछ आता नहीं उसके खेत में उसके पैडी में कोहर (कुआं) बनकर खाली हो और उन तक यदि ये साधना का जल पहुंच जाये तो उनकी फसल भी पक जायेगी। कोश यानी खजाना; अर्थात् जिसको खजाना गुरु के यहां से मिल गया है और फिर वो लुटाने निकलता है। वो तिजोरियां खुली रखता है। वो सब खाली करता है। भरा हो उसके खाली होना पड़ता है। ये नियम है। ब्राह्मण होगा वो 'दया प्रभु की' कहकर आटा मांगता है और साधु 'भज ले राम' कहकर आटा मांगते हैं। हमारे भाग्य में रोटी नहीं होगी? सभी का प्रारब्ध होता है। पर घर-घर क्यों मांगते हैं? तूमड़ी भरने के बाद रोटी बनाकर और कोई भूखा आया हो उसे हम दें।

ये दत्त भगवान हैं न, ये कुत्ते को भी रखते हैं और गाय को भी रखते हैं। यह बहुत बड़ा संदेश है। गौग्रास और

श्वानभाग। यह बहुत बड़ा मैसेज है। अपने यहां गौग्रास हम निकालते हैं और श्वानभाग निकालते हैं। ये दोनों संकेत दत्तप्रभु हमें देते हैं। जो मांगा होगा और फ़िर जो इकठ्ठा हो गया होगा उसका अन्नक्षेत्र उन्होंने खोला होगा और हजार गुना करके रोटी खिलायी होगी दुनिया को। कारण कि कोहर का पानी है वो फिर खेत से खेत में पहुंचाने की यह एक बहुत बड़ी सद्वृत्ति है। बहुत बड़ी प्रवाही परंपरा है। तो जिसको जिसको ज्ञान की उपलब्धि हुई वो फिर बांटने निकले हैं। और हां, ज्ञान और दीक्षा में शुरूआत में सब होता है कि 'कुपात्रनी आगळ वस्तु न वोरवी पानबाई', ऐसा गंगासतीने भी कहा हैं। परंतु अन्नक्षेत्र में कहीं पात्रता देखनी चाहिए कि पापी आया है या पुण्यशाली आया है? कोई बीमार हमारे शरण में आये तो उसे ऐसा कहेंगे कि तुम पापी हो! तुम्हारी दवा नहीं करनी चाहिए! उसे औषधि दी जानी ही चाहिए। वहां पात्र-कुपात्र का भेद नहीं होता। देना ये तो समाज का धर्म है। उसके पास है और वो कोहर बनकर बांटने निकला है कि इसे बांटना चाहिए। इसलिए ये पंक्ति आती है-

जेम झळुंबे कूवाने माथे कोस जो,
गरवा ने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

गांव में एक-एक मोट और कुआं रखना चाहिए। ये रहना चाहिए। या तो इसका विडीयो बन जाना चाहिए नहीं तो आज के लड़कों को पता ही नहीं होगा कि नदियां कहां थी? पानी नहीं रहा, कुछ भी नहीं रहा! बाप! ये सब भुला न जाये! तो ऐसे रूपक इस लोकगीत में पकड़े हैं। मुरली के उपर नाग झळुंबे, कुएं के उपर मोट। आगे के रूपक हम कल आगे ले जायेंगे। आज रामजन्म तक कथा पहुंचानी है।

भगवान शंकर को पार्वती कहती हैं, गूढ में गूढ तत्त्व राम को खोलकर रामकथा के द्वारा मुझको समझाईये। और भगवान शंकर प्रसन्न हुए। भगवान शंकर ध्यानरस में से बाहर निकले। मुखर होने के लिए मौन की गहराई में से बाहर निकलना पड़ता है। और अपना कार्य पूरा करने के बाद वापस उसी मौन की गहराई में उतर जाना पड़ता है। और पहला वाक्य जो शिव ने बोला, उसमें दो बार 'धन्य' शब्द कहे हैं। 'धन्य धन्य गिरिराज कुमारी।' हे पार्वती, आपको धन्यवाद है। इसका अर्थ ऐसा है कि भगवान की कथा कहलाने के खातिर जो निमित्त बनता है उसे शंकर भगवान धन्यवाद देते हैं।

भगवान शिव कहते हैं, देवी, राम वो हैं जो पैर के बिना चल सकते हैं, कान के बिना सुन सकते हैं, हाथ के बिना सभी कार्य कर सकते हैं। आंख बिना सब को देख सकते हैं। ऐसी जिसकी अलौकिक करनी है, जिसकी महिमा वेद न वर्णन कर सके, ऐसा जो परमतत्त्व है वो ब्रह्म बालक के रूप में अवतरित हुआ था। शिवजी कथा का आरंभ करके भगवान राम के अवतार के पांच कारण बताते हैं। पहला कारण बताया राम अवतार का जय-विजय। दूसरा कारण सतीवृंदा का भगवान विष्णु को दिया शाप। तीसरा कारण नारदजी ने शाप दिया परमात्मा को। चौथा कारण मनु-शतरूपा की नैमिषारण्य में अद्भुत तपस्या और फलस्वरूप भगवान ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि अगले जन्म कें आप दशरथ-कौशल्या होंगे तब मैं आपके यहां पुत्र बनकर आऊंगा इत्यादि। पांचवां और अंतिम कारण राजा प्रतापभानु एक बार कपटमुनि के संग में लिपटा है और कुसंग के कारण उसे स्वार्थ जगा। ब्राह्मणों ने उसे शाप दिया। फिर प्रतापभानु रावण बनता है। उसका भाई अरिमर्दन कुंभकर्ण बनता है। उसका एक प्रधानमंत्री दूसरी माता की कोख से विभीषण बनता है।

रावण, कुंभकर्ण, विभीषण ने बहुत तप किया। परिणाम स्वरूप अगम और दुर्गम वरदान उन्होंने प्राप्त किए। समाज में भ्रष्टाचार व्याप्त गया! पृथ्वी कांप उठी है। गाय का रूप धारण किया धरती ने। ऋषिमुनियों के पास जाकर पृथ्वी रोने लगी। ऋषिमुनियों ने कहा, हमारे वश की बात नहीं है। सब मिलकर देवताओं के पास गये। देवताओं ने कहा, हम इसमें कुछ भी नहीं कर सकते। सभी आये हैं ब्रह्मा के द्वार पर। और फिर ब्रह्मा की अगुवाई में सभी इकठ्ठे हुए और परमतत्त्व की प्रार्थना शरू की। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण कीजिए। अंश के साथ मैं अवतार धारण करूंगा।' हर समय मेरी व्यासपीठ विनम्रता से कहती रही है कि ईश्वर का प्रागट्य कैसे होता है? खाली तीन ही सूत्र पूरे प्रसंग में दिखे हैं। एक तो देवताओं ने, ऋषिमुनियों ने सभी ने प्रयत्न किया कि रावण के जुल्म से हम सब ऐसा करेंगे तो बचेंगे। पुरुषार्थ में कोई कमी नहीं रखी। परंतु पुरुषार्थ से नहीं हुआ फ़िर ब्रह्मा ने उपाय बताया कि अब हम पुकार करें। वे पुकार किए तो भी हरि प्रगट न हुए और इसीलिए ब्रह्मा ने तीसरा उपाय बताया कि अब हम प्रतीक्षा करें। बाप! तीन ही काम हमें करने है। हम मानव हैं। हमारा पुरुषार्थ भी हमारे जैसा ही होगा। उसकी एक मर्यादा है पर पुरुषार्थ कर लेना चाहिए। प्रामाणिक पुरुषार्थ और फ़िर उसकी सीमा आ जाये फ़िर प्रार्थना का प्रवेश शुरू होता है। फ़िर पुकार करना पर ये पुकार वो अपना ही और जीव का पुकार कितना! उसकी भी मर्यादा आ जाती है। बहुत से आदमी पुरुषार्थ भी करते हैं और पुकार भी करते हैं परंतु राह देखने के लिए तैयार नहीं हैं! हमने इतना 'हनुमानचालीसा' का पाठ किया! इतना गायत्री अनुष्ठान किया! इतना मौन रखा! और कोई फल नहीं मिला! ये सब करने के बाद तीसरा पडाव है और वो प्रतीक्षा है। आखिर फल तो उसके अनुग्रह पर आधारित है। और अब तुलसीदासजी हमको अयोध्या ले जा रहे हैं, जहां राम का प्रागट्य होनेवाला है।

अयोध्या के महाराज दशरथ सम्राट महाराज। त्रेतायुग है। रघुकुल पावन कुल है, वंश है। महाराज दशरथजी का शासन है। धर्मधुरंधर हैं, ज्ञानी हैं, गुणनिधि है। उनकी रानियां भी पवित्र आचरण करती हैं। पवित्र दांपत्य है पर एक मुश्किल है, पुत्र नहीं है। एक ग्लानि है, मेरे बाद रघुवंश समाप्त हो जायेगा! दशरथजी गुरुद्वार-वशिष्ठजी के द्वार पर पधारे हैं। अपनी बात रखी। वशिष्ठजी मुस्कुराये और कहे कि राजा, मैं तो कब से प्रतीक्षा कर रहा हूं कि आप कब आकर ब्रह्मजिज्ञासा करेंगे। धीरज धारण कीजिए। चार पुत्रों के पिता बनोगे। परंतु पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाना पड़ेगा। शृंगी को बुलाये हैं। पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया है। भक्ति सहित आहुतियां दी गईं हैं। यज्ञपुरुष अग्नि के रूप में प्रसाद की खीर लेकर बाहर निकले हैं। प्रसाद का पात्र वशिष्ठजी को दिया और कहा कि राजा को कहिएगा, यह प्रसाद अपनी रानियों को यथायोग्य बांट देंगे। तीनों रानियों को बुलाकर राजा प्रसाद का वितरण करते हैं। समयमर्यादा पूरी हुई। भगवान के प्रगट होने का समय नजदीक आया है। पंचांग अनुकूल हुआ। चराचर हर्ष में डूब जाते हैं। त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नौम तिथि, मंगलवार, मध्याह्न के समय, अभिजित नक्षत्र है। धीरे-धीरे अनाहत नाद का कहीं गायन होने लगा है। मंद सुगंधी शीतलवायु बहने लगती है। आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी है। और पूरा जगत जिसमें निवास करता है अथवा तो परम जगत में निवास करता है ऐसा ब्रह्म, ऐसा परमात्मा, ऐसा भगवान मेरा राम चतुर्भुज स्वरूप में माँ कौशल्या के प्रासाद में प्रगट हुए और तुलसी गा उठते हैं-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी ।।

प्रभु चतुर्भुजरूप में प्रगट हुए हैं। फिर माँ की गोद में प्राकृत बालक की भांति भगवान रोने लगे। वो रोने की आवाज़ महल के बाहर गई। सभी दौड़ आये हैं! आया है ब्रह्म, हुआ सब को भ्रम! इसका निवारण कौन करेगा? इसीलिए कहा, जल्दी वशिष्ठजी को बुलाओ। गुरु को बुलाया। ब्रह्मानंद में राजा डूबे। फिर परमानंद में डूबे हुए महाराज कहते हैं, बाजेवालों को बुलाओ, बधाई बजाओ। पूरी अयोध्या में रामजन्म उत्सव और बधाईयां शुरू हुईं हैं। गिरनार की गद्दी के उपर इस व्यासपीठ पर बैठकर इस शिवरात्रि के अनुसंधान में गिरनार की तलहटी में, इस कथा में जब रामजन्म हो रहा है तब पूरी दुनिया को रामजन्म की बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो!

> सद्गुरु किसी दिन शिष्य को परवश नहीं करता। और सच्चा शिष्य किसी दिन गुरु को बंधन में नहीं डालता। गुरु बंधेगा ही नहीं। वो तो उसका कोमल स्वभाव होता है इसलिए ऐसा रखता है साहब! बाकी गुरु बंधेगा ही नहीं। जिसे ईश्वर नहीं बांध सकता उसे दूसरा कौन बांध सकता है? और जो गुरु है, बुद्धपुरुष है वो किसी को बांधेगा नहीं। बुद्धपुरुष किसी भी दिन हम सबको अकेले नहीं रहने देगा साहब! पर वह बंधन में नहीं डालेगा। और छोटी-बडी वित्तजा, तनुजा, मानसी, तन-मन-धन से जो सेवा करता है वो गुरु को बांधने की असफल कोशिश न करे क्योंकि उसमें वो असफल ही रहेगा! गुरु तो मुक्ति का पर्याय है। कोई शिष्य अपनी सेवा से न गुरु को बंधन में डाले और न गुरु अपने शिष्य की निजता को परवश करे।

कथा-दर्शन

साधना निश्चित करने में हम स्वतंत्र हैं पर कृपा करने में हरि स्वतंत्र है।

इस कलियुग का बहुत बड़ा सफल, सरल, सबल साधन है हरिनाम।

सच्ची सेवा तभी होगी जब हमारे पास भजन की थाती होगी।

धर्म फूल की तरह मुस्कुराता, गाता, हंसता हुआ होना चाहिए।

साधु जहां जाता है वहां उजाला लेकर जाता है।

साधु चमत्कार नहीं करता, साधुपन स्वयं चमत्कार है।

साधु सोया हो तो भी उसकी साधना काम करती रहती है।

साधुसंग या कोई बुद्धपुरुष हमारा स्वभाव बदल सकता है।

भक्ति यै वैराग्य से अधिक सुशोभित होती है।

बदला ले वो गुरु नहीं, बलिदान दे वो गुरु है।

गुरु तो मोक्ष का दूसरा नाम है; गुरु तो मुक्ति का पर्याय है।

गुरुओं को मोक्ष देने की जरूरत नहीं, मुक्तता देने की आवश्यकता है

शिकायती चित्त कभी भी अध्यात्म की यात्रा नहीं कर सकता।

सबल होने के बाद सरल होना बड़ा कठिन है।

पीड़ा के बिना पाया नहीं जाता।

भटकना अलग वस्तु है और परिक्रमा करना अलग वस्तु है।

व्यक्ति को भी समझे बिना न पकड़ो और उसके वक्तव्य को भी समझे बिना न अपनाओ।

परिवार में एक विचार, एक मंत्र हो तो जीवन जीने जैसा लगता है।

हम लोग गाय की पूजा करते हैं परंतु गाय से प्रेम नहीं करते।

हमें दूसरे की निंदा करने की इच्छा हो तो समझना चाहिए कि अभी हमारी आंख पवित्र नहीं हुई है।

गलत आदमी पर किया भरोसा और सच्चे आदमी पर की गई शंका ही हमारे दु:ख का कारण है।

रूखड़ निरंतर जाग्रत तत्व है

आज से शिवरात्रि के मेले का आरंभ हो रहा है। आज भगवान भवनाथ में अखाडे के सभी पूजनीय महंत, महामंडलेश्वर, सभी संत महात्मागण और अधिकारीगण, सब समाज एकत्रित होकर भवनाथ की ध्वजा चढ़ाते हैं। अखाड़े अपनी-अपनी ध्वजाएं चढाएंगे। छोटे-बड़े उतारे भी अपने ढ़ंग से ध्वजारोहण करेंगे। 'मानस-रूखड़'; इतना सब रूखड़ के विषय में लिखा जा रहा है कि कौन-सी वस्तु लूं, कौन-सी छोडूं? अंबाजी की कथा से बिलग-बिलग स्थानों में आयोजित कथा में भिन्न-भिन्न केन्द्रीय विचार के साथ हुए वार्तालाप, श्रोताओं के साथ उसमें जो-जो रूखड़ के विषय में बोला गया हो वो भी और गुरुकृपा से उद्‌गार निकलेगा वो; और थोड़ा आगे बढ़ायें।

बाप! दो वस्तु है। अपने यहां एक साधनापक्ष और दूसरा कृपापक्ष। साधनापक्ष में साधक स्वतंत्र होता है कि मुझे कौन-सा साधनापक्ष लेना है। मानों कि किसी को हरिनाम में ही आनंद आता है तो वह कीर्तन करे; कोई नामजप करे। ये उसकी स्वतंत्रता है। किसी को योगमार्ग की यात्रा करनी है तो वो योगपंथ कबूल करे, उसमें वह स्वतंत्र है। कोई ज्ञानमार्गी है, कोई कर्ममार्गी है। बहुतों को कथा ही सुननी है। कोई माने कि मुझको कथा में ही आनंद आता है, मुझसे कोई जप, तप, यज्ञ या होम नहीं होगा, उसका वो मार्ग स्वतंत्र है। मुझको कथा गानी है, मैं स्वतंत्र हूं। परंतु कृपा के मार्ग में साधक की स्वतंत्रता नहीं होती है। साहब! कृपावाला कुछ समझ में नहीं आता! कृपापक्ष को या तो रूखड़ समझता है और या तो अपने स्वार्थ हेतु को दूर रखके कोई दृष्टा बनकर रूखड़ मार्ग से गति करने की झंखना रखनेवाला साधक समझ सकता है। मेरा तो ग्रंथ 'रामायण' है। उसके आधार पर मैं रात को यज्ञकुंड के पास बैठे-बैठे विचार करता हूं कि 'रामायण' में तो कृपा का कोई ठिकाना ही नहीं है! कोई ठिकाना ही नहीं है! एक जगह ऐसा लिखा है कि-

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद ।

तुलसी कहते हैं कि इस जगत में परमपद, मुक्ति-मोक्ष अत्यंत दुर्लभ है। और उसके दूसरे ओर जिसने जीवन में कुछ नहीं किया दुराचार के सिवाय, उन सब को सामूहिक मुक्ति दी गई है! इस कृपा का क्या करना? हमें कौन-सा मार्ग लेना है? मुझे ऐसा लगता है कि उसे जहां मौज आती है वहां करे। इसमें आप उसे अदालत में पेश नहीं कर सकते। थोड़ा-बहुत साधनापक्ष समझ में आता है। क्योंकि उसको हमनें तप किया है कि मुझे ध्यानमार्ग से जाना है। और जो नहीं समझ में आता उसका कारण खोजने के लिए मुझको 'रामायण' में जाना पड़ता है, क्योंकि यह मेरा जीवनग्रंथ है। 'महाभारत' और 'रामायण' में दो समान प्रसंग हैं। 'रामायण' में बंदर भी उतने ही मरे हैं क्योंकि युद्ध लाश के बिना होता ही नहीं। उसमें लाशें ही होंगी, मुर्दे ही होंगे! यह रूपवान विश्व कब युद्ध से मुक्त होगा? हे गिरनारी, कृपा कीजिए!

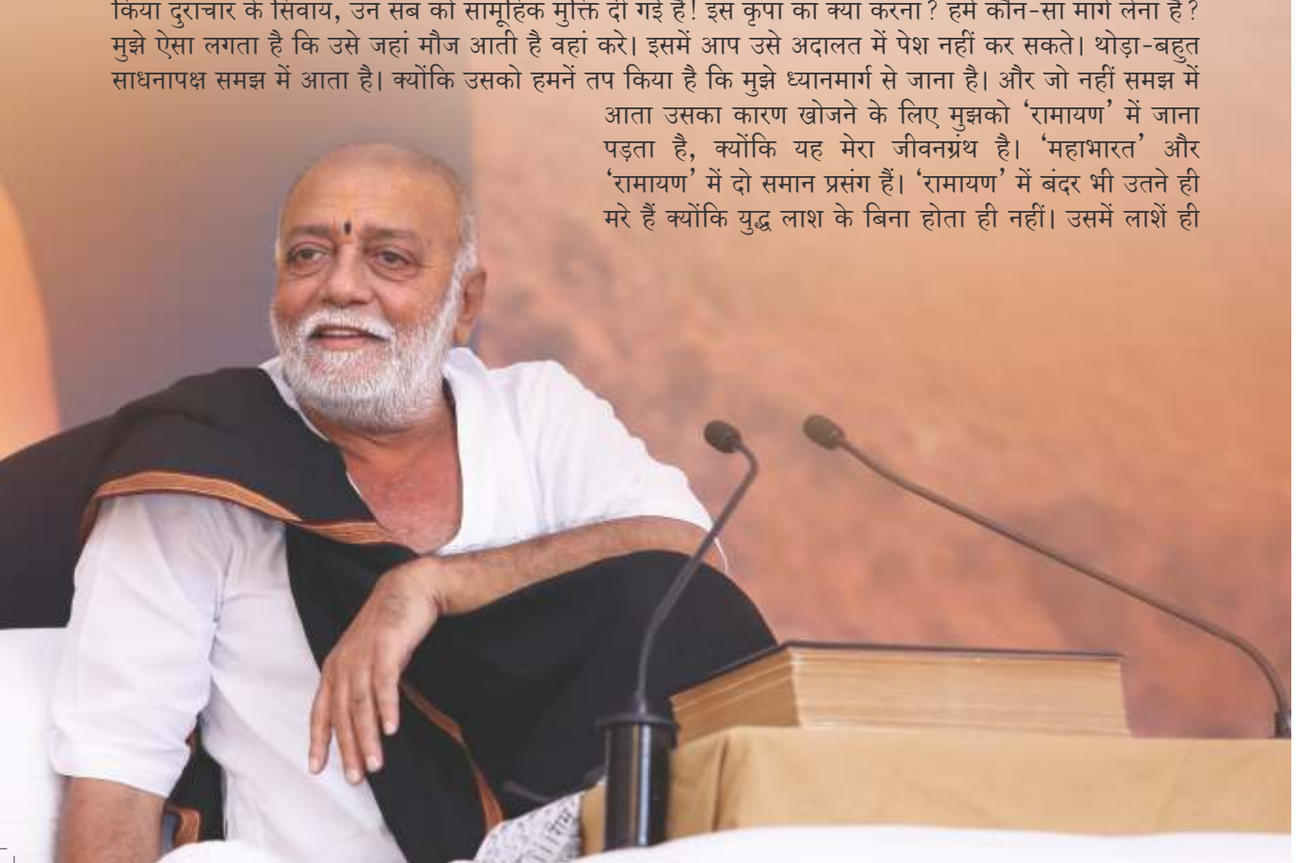

इस जगत में शस्त्रों को जला डालें! पांच-दस वर्ष तो शस्त्र बिना का जगत बनाएं। अपना कौन सुनता है? मैं सतत कहता हूं, एकाध पंचवर्षीय योजना ऐसी कीजिए कि जिसमें प्रेम ही हो। और अनुकूल न आये तो दवा बदल दीजिएगा! फिर लाठी लीजिए या फिर बरछी ले लेना! फिर कुल्हाडी ले लेना! फिर तलवार उठा लेना। परंतु युगों से चल रहा है फिर भी यह समाज चाहिए उतना अच्छा नहीं हुआ है। तो अब ये दवा बदलनी चाहिए साहब! अब औषधि में फेरफार होना चाहिए। और ये नई औषधि हम जो लायें वो सफल न हो तो फिर उसका वही कीजिएगा! युद्ध बिना छल के नहीं होता, युद्ध हिंसा बिना नहीं होता; मुर्दे के बिना नहीं होता।

रूखड़ों को समस्त सृष्टि में कहीं दीवाल नहीं दिखती। उसे रूखड़िया कहता हूं। ऐसे दृष्टाओं को रूखड़ कहता हूं। एकदम धरती पर बह आऊं तो मेरी दृष्टि से क्रिकेट मेच खेली जाती हो और उसमें जो अम्पायर है वो रूखड़ है। उसे हार-जीत से कुछ भी लेना-देना नहीं है। और अभी बिल्कुल गांव के अंदर चौपाट खेलते हों वो चार या दो लोग जो हो वो खेलते हो उसमें बहुत-से उपर ही उझककर खड़े होते हैं। कौन हारेगा, कौन जीतेगा यह उझकनेवालों को कुछ लेना-देना नहीं होता। वैसी यह झुकन है। झुकन अर्थात् साक्षी बनकर जगत को देखने का जिसने अभ्यास किया है वो जगमगाता तत्त्व, वो रूखड़ है। मेरे देश का न्यायधीश रूखड़ होना चाहिए। न्यायधीश रूखड़ है, उसे कौन जीता और कौन हारा उसके साथ कुछ लेना-देना नहीं होता। व्यासपीठ रूखड़ होनी चाहिए। वर्णमुक्त, वर्गमुक्त, ऊंच-नीचमुक्त, भेदमुक्त। तमाम से मुक्त होनी चाहिए। राजगद्दी इसको समझती है, यह तो व्यासगद्दी है, जिगर मुरादाबादी का शे'र है-

उनका फ़र्ज़ क्या एहले-सियासत जाने।
मेरा पैगाम मुहब्बत है, जहां तक पहुंचे।

गुरुपीठ तटस्थ, कूटस्थ होनी चाहिए। गांव में अष्टमी के दिन जो पैसे से पत्ता खेलते हैं उसमें भी बहुत से झुके ही होते हैं! उन्हें हार-जीत से कुछ लेना-देना नहीं होता! ऐसा कोई तत्त्व झुककर अपने खेल को देख रहा है। हम बावन पत्ता कैसे फेट रहे हैं, हम कैसे चालबाजी करते हैं, कैसे-कैसे नेटवर्क लगाते हैं उसे कोई झुककर देख रहा है। वो मेरा रूखड़ है, तथाकथित रूखड़ नहीं। अनासक्ति योग आ जाता है। तीन अंग है रूखड़ के। उसमें से एक अंग है अनासक्ति योग। तुलसी कहते हैं-

साधु चरित सुभ चरित कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ।।

नीरस ये पूरा रूखड़ पक्ष है। अनासक्ति, नीरसता। 'बिसद' का अर्थ होता है शुभ्रता, पवित्रता, उज्वलता, धवलता; ये पक्ष और 'गुनमय।' यह जगत हिंसामुक्त हो, यह जगत शस्त्रमुक्त हो, यह जगत बहुत रूपवान हैं। जगत जीने जैसा है। तो राम के युद्ध में, रावण के युद्ध में भी बहुत लोग मरे हैं। राम के पक्ष में भी कितने जीवित रहे? बाकी तो सब बंदर बेचारे मर ही गये और इसीसे जब विजयी राम से इन्द्र मिलने आता है तब राम ने कहा, 'हे समझदार इन्द्र, आप आये ही हैं तो अब आपके पास अमृत है। तो इसमें जितने मरे हैं उनके उपर अमृतवृष्टि कीजिए और उन्हें जीवित कीजिए।' राम को किसको जीवित करना है? रींछ और बंदर मृत्यु को भेंटे है उन्हें जीवित करना है, राक्षसों को नहीं! तो राम पक्षपाती हैं? खबरदार! कोई बोले तो कि राम पक्षपाती हैं! राम साक्षी हैं, राम दृष्टा हैं, राम परमात्मा हैं। तो ऐसा क्यों कहते हैं? ये सब रींछ और बंदर दैवीगुण हैं। और समाज में दैवीगुण मर जाये यह समाज के लिए ठीक नहीं है। इसीलिए इन्द्र ने अमृतवृष्टि की और अच्छे गुण जिस समाज में से चले गये हैं उन्हें फिर से बैठाओ। और जो खराब तत्त्व थे, उनकी योग्यता नहीं है फिर भी मुक्ति देनी है वो मेरा कृपापक्ष है। तो भगवान राम कृपापक्ष दिखलाते हैं। और इस कृपापक्ष को मैं रूखड़ीपक्ष कहता हूं। यह कथा किस लिए हैं? मनुष्य के अंदर जिन मूल्यों का ह्रास होता जा रहा हैं उसे तुलसी की चौपाई की अमृतवर्षा से जो शुभतत्त्व हैं वो फिर से सजीवन बनें और जो आसुरीतत्त्व हैं वो नष्ट होने चाहिए। राम का भेद नहीं।

तो बाप! रूखड़ की जब चर्चा हो रही है तब वो कृपातत्त्व है। रूखड़ ये निरंतर जाग्रत तत्त्व हैं। निरंतर प्रवाहमान तत्त्व का नाम रूखड़ है। 'रूख' का अर्थ होता है समाज का रूख। कभी गाली देता है, कभी प्रशंसा करता है, कभी वाह-वाह करता है, कभी पैर पकड़ता है, वही पैर पकड़कर पीछे खींचता है! ये सब समाज का रूख होता है। 'ड़' अर्थात् डरना नहीं। हां, उस समाज का रूख चाहे जैसा हो फिर भी उससे डरे नहीं उसका नाम रूखड़ है। ऐसे महापुरुष अपने यहां हुए हैं, उनकी चेतना को मैं रूखड़ कह

रहा हूं। तो 'रूखड़' जो समाज के किसी भी रूख से हानि, लाभ, स्तुति, निंदा, स्वीकार, अस्वीकार किसी भी रूख से किसी दिन भी डरता नहीं है उसका नाम रूखड़। निरंतर जाग्रत रहे ऐसी जागृति का एक रूखड़परक मंत्र ऋग्वेद में है। विनोबाजी ने जिसका संपादन किया है, ऐसा मंत्र मैं लिख कर ले आया हूं। एक वेद मंत्र, विनोबाजी ने 'वेदामृतम्', एक छोटी-सी पुस्तक तैयार की है। उसमें ऋग्वेद के उनकी पसंद के मंत्र लिखे हैं और उसका भाष्य अपने ढंग से उन्होंने किया है। उसमें से एक वेदमंत्र पहले मैं बोलूंगा उसे आप थोड़ा ध्यान देकर सुनेंगे फिर आप बोल सकेंगे।

यो जागार तमृच: कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सखे न्योका:।।

इसका अर्थ जो विनोबाजी ने किया है वो तो बहुत गहन है पर हमें समझ में आये इतना अर्थ चाहिए। 'यो जागार' का अर्थ है जो जागता है, जो जाग रहा है। समाज में जो ऐसे रूखड़ तत्त्व हैं वो निरंतर जागते हैं। 'तमृच: कामयन्ते' उनके पास सभी कामनाएं सफल होने आती हैं, उसे करनी नहीं पड़ती। समुद्र नदियों को बुलाता नहीं है पर समुद्र की विशालता, समुद्र की गहराई और समुद्र की मर्यादा ये सब नदियों को निमंत्रित करते हैं। नदियां दौड़ी-दौड़ी जाती हैं। उसे कोई काम नहीं पर सभी नदियां समुद्र में जाती हैं। ऐसा बुद्धपुरुष, ऐसा बुद्धतत्त्व, ऐसा रूखड़त्व उसे कामना नहीं करनी पड़ती। वही कामनाएं सफल होने के लिए कृतकृत्य होने के लिए ऐसे बुद्धपुरुष की शरण में जाती हैं महामुनि विनोबाजी का अर्थ है कि जो जागता है उसके पास सभी कामनाएं सफल होने लगती हैं।

यो जागार तमु सामानि यन्ति।

महामुनि विनोबाजी का अर्थ यह है कि जो जागता है उसके पास सामवेद गाते-गाते उसके घर जाता है। सामवेद अर्थात् वेद या ज्ञान; ऐसे जगत का जो समग्र ज्ञान कहलाता है वो जो रूखड़ जागता है उसके घर जाता है। फिर कोई वेद का वाक्य कहे या कोई संतवाणी की एक पंक्ति बोले। उसके पीछे उसके घर सामवेद को जाना ही पड़ता है। जो जागा है कितने महापुरुष हैं! गंगासती कहां वेद पढ़ी थी? पर वेद को सामने से जाना पड़ा। नरसिंह मेहता तो नागर थे; पढ़े होंगे, अवश्य, फिर भी नरसिंह के द्वार पर वेद को जाना पड़ा। त्रिकमसाहब कितना पढे थे? भीमसाहब कितना पढे? दासीजीवण कितना पढ़े? सामवेद को उनके घर जाना पड़ा। समग्र ज्ञान संपदा उनके घर जाती है। किसके घर? जो जागता है उसके यहां ज्ञान संपदा आती है। जो जागता है मतलब सावधान है, कृष्णमूर्ति उसे अवेरनेस कहते हैं। निरंतर अवेरनेस, निरंतर सावधानी जो बरतता है, उसमें शंकर का नाम आता है।

सावधान मन करि पुनि संकर ।
लागे कहन कथा अति सुंदर ।।

डोंगरेबापा का तो खास मंत्र जैसा यह वाक्य था, 'शुकदेवजी सावधान! शुकदेवजी सावधान!' भवनाथ में डोंगरेबापा की कथा थी तब मैं शापुर ट्रेनिंग कोलेज में आधा दिन वहां एटेन्ड करता और आधा दिन यहां आता था। डोंगरेबापा की आधी कथा मैंने इस भवनाथ में सुनी थी। और खाना तो यहां साधु का पडाव था वह खा आते! वहां तो एक लहर थी! अब तो गंगाजल का व्रत! स्वयं खड़ा किया है सब! बाकी कहीं भी खा लेते। बहुत आनंद था! यह सब याद करता हूं तो मुझे बहुत आनंद आता है।

तो शापुर से आधा दिन मैं डोंगरेबापा की कथा सुनने आता था। और डोंगरेबापा कहते, 'शुकदेवजी, सावधान!' अवेरनेस। जो जागता होगा उसके घर सामवेद आयेगा, उसके घर ज्ञान आयेगा। और उसकी समझदारी ही एक विद्यापीठ का काम करेगी। उसके अंदर से सूत्र प्रगट होंगे। तो जो जागता है उसके घर वेद आता है। फिर 'यो जागार तमयं सोम आह।' उसे अमृत की डकार आती है। जैसे कि कोई सोमपान किया हो, सोमरस पिया हो और फिर जैसी अमृत की डकार आती है उसी तरह जिसके घर जागरण है उसके घर ऐसे अमृत की डकार होती है। उसकी तृप्ति होती है। और अंत में सूत्र है, 'तवाहमस्मि सख्ये न्योका:।' अस्तित्व ऐसा कहता है कि जो जागता होगा उसके घर उसे हम 'सख्ये' अर्थात् मित्र बनने के लिए बरबस जायेंगे। हमें आपका दोस्त बनना है, हमें आपके साथ मैत्री करनी है; हमें भाईबंदी बांधनी है। अर्थात् जो जागता है उसके यहां ज्ञान आता है। जो जागता है उसके यहां कामनाएं नहाने-धोने आती हैं। जो जागता है उसके यहां अमृत की डकार आती है। जो जागता है उसके यहां परमतत्त्व मैत्री बांधने आते हैं। अर्थात् जो जागता है उसे मेरी व्यासपीठ 'रूखड़' कहती है। और फ़िर बड़ी गहराई तक थाह ले सकता है ये भी रूखड़ की व्याख्या हो सकती है। अब जगदीशभाई त्रिवेदी का पद-

भले फाटी पडे पृथ्वी कदी बीवे नहीं रूखड़।

मैंने कई बार कहा है कि डरता है वो साधु नहीं। चाहे जो हो जाये वो डरता नहीं है।

समाधि ले परंतु होठने सीवे नहीं रूखड़।

साहब, समाधि लेगा परंतु बोलना बंद नहीं होगा। उसका रटन सफाई देने के लिए नहीं, उसका हरिभजन, उसका रामरटन, उसके सत्वचन उसमें वह होठ सील नहीं लेता। वो तो बोलता ही रहता है, बोलता ही रहता है।

खरो मीरां अने सुकरातनो पूर्वज हशे नक्की,
हळाहळने पचावीने नकर जीवे नहीं रूखड़।

ऐसा रूखड़ बाबा, जो गौरवशाली के उपर जगमगाया है, ऐसा मेघाणीभाई ने चित्रण किया है। ऐसा रूखड़ जिसका हरीन्द्रभाई ने मूल्यांकन किया है। जिसे अज्ञात कवि ने लोकगीत की तरह गाया है। उसकी पहचान कवि देता है। गतकल इस पद के अमुक-अमुक बंधों को हम अपनी तरह से बातों में लेते थे, उसमें-

जेम झळुंबे कूवाने माथे कोस जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

पांच-पांच तत्त्व उतरे हैं, जिसमें पृथ्वीतत्त्व, वायुतत्त्व, जलतत्त्व, आकाशतत्त्व और अग्नितत्त्व; तो पांच-पांच विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनका भी संदर्भ हैं। इसे बिल्कुल आध्यात्मिक स्तर मिलना चाहिए। इस पद की व्याख्या और गहराई कोई जागृतिपूर्वक करेगा तो समझ में आयेगा। मैंने कल भी कहा था ये सब प्रतीक, ये सब रूपक, ये सब शब्द समझने जैसे हैं।

जेम जळुंबे बेटाने माथे बाप जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

इन नौ दिन में इसे हम कैसे देख पायेंगे वो मुझे मालूम नहीं पर अभी ही मैंने आपके समक्ष ये कहा है कि अपने यहां भक्तिमार्ग में पांच भावों की प्रतिष्ठा है। उसमें माधुर्य, शांत, वात्सल्य, सख्य ये सब जो भाव अपने यहां हैं वे सभी भाव इस पद में प्रकट हुए हैं। कहीं वात्सल्यभाव है, कहीं माधुर्यभाव है, कहीं शांतभाव है, कहीं सख्यभाव है। ये सभी भाव भी आये हैं। अब बेटा के उपर जो बाप इतराता है वो वात्सल्यभाव है। नर के माथे पर नारी इतराये, गोपी के माथे कान्ह इतराये तब फिर हरीन्द्रभाई उसे अलग करते हैं। कहां एकाकार भाव हैं; कहां वात्सल्यभाव है तो कहां तादात्म्यभाव है। नर के माथे नार ये तादात्म्यभाव है। फिर कान्ह-गोपी की बात आये तो तो बिल्कुल तादात्म्य। तो बाप जिस प्रकार बेटे के उपर इतराता है वैसे रूखडिया इतराता है। कोई ऐसा संत, कोई ऐसा अलगारी फकीर, कोई ऐसा बाबा, कोई ऐसा सूफी, कोई सीमा में हमें ऐसी चेतना को बांधना नहीं है। सभी जो औलिया पुरुष है वे समस्त जगत को अपनी संतान समझकर हमारे और आपके उपर इतराते हैं। यह वात्सल्य है। ये बुद्धपुरुष क्या करते हैं? हम पर वात्सल्य बरसाते हैं। यह संपदा किसे दी जाये? पर पुत्र को उस समय बाप को सद्गुरु मानना चाहिए। सांसारिक संबंध नहीं चलेगा। और बाप को उस समय पुत्र को अपना शागिर्द समझना चाहिए क्योंकि यह एक गुरु और शिष्य का जो संबंध है वह थोड़ा अपलिफ्ट हुआ है। थोड़ा ऊंचा संबंध है। और गुरु-शिष्य का संबंध गुणातीत ही होता है। 'बिना पुत्रं बिना शिष्यं न देयं', यह जो उपनिषदी भाव है वह भाव यहां इस पद में लिखा है। अपना कोई बुद्धपुरुष, अपना कोई रूखड़, अपनी कोई गिरनारी चेतना वो अपने उपर ऐसा प्रेम बरसाती है और वह भी प्रामाणिक डिस्टन्स रख कर इतराती है। तो 'जेम झळुंबे बेटाने माथे बाप जो', नादवंश और बुंदवंश की बात कोई रूखड़ कवि कर रहा है। इसमें ऐसे संबंधों का संदर्भ है।

तो 'मानस-रूखड़'; मुझे बहुतों ने प्रश्न पूछा है कि बापू, रूखड़ की माला कौन-सी? रूखड़ का मंत्र तो हमनें उस दिन कहा कि रूखड़ का मंत्र 'अलख' है। ऐसा

एक प्रश्न है। रूखड़ की माला आपने पूछा है तो कहूंगा, श्वासोश्वास ही उसकी माला है। रूखड़तत्त्व की माला शायद श्वासोश्वास के मनके की ही हो सकती है। मेरी दृष्टि से रूखड़ ब्रह्मचारी भी है। स्थूलरूप में आप देखें, वेलिया मेघाणीभाई का ब्रह्मचारी है। वह खेत में जाता है और कुदाली अपने आप खेत जोते ये ब्रह्मचारी के बिना संभव नहीं है साहब! जिसका संयम, जिसका ब्रह्मत्व इतना मजबूत होगा उसकें घर वो ब्रह्म खुद साथी बनकर खेत जोतता होगा। इसलिए वह ब्रह्मचारी है। ब्रह्म में विचरण करनेवाला तत्त्व है। और यह रूखड़ बाबा मेघाणीभाई का वेलियो, वेलनाथ वो गृहस्थ भी है। मीनबा और जशोबा, उनके साथ उसका गृहस्थ जीवन भी है। इसलिए रूखड़ गृहस्थ भी हो सकता है। रूखड़ ब्रह्मचर्याश्रम में भी हो सकता है। और जिसने इतने वर्षों तक इस गिरनार की परिक्रमा की है तो कहना पड़ेगा कि वो मनुष्य वानप्रस्थी है और इतने वर्षों तक इस गिरिकंदराओं में परिभ्रमण किया हो और अंत में जो आदमी समाधि लेता है, जो आदमी अंत में ऐसे खेलते-खेलते चला जाये, सभी अनासक्ति के धामों को जिसे तोड़ डाला हो उसके जैसा संन्यासी कौन हो सकता है?

तो रूखड़ वानप्रस्थी है। ब्रह्मचारी है, गृहस्थ है, संन्यासी है। वो सब में दिखता है। किसी तत्त्व से पर नहीं फिर भी प्रामाणिक डिस्टन्स रखकर रूखड़तत्त्व किसी न किसी रूप में हमारे उपर जगमगा रहा है। वही कृपा पाने के लिए हम नौ दिन से इस गिरनार की तलहटी में हैं। मेरा आखिरी हेतु तो हरिनाम ही है। साहब, बाकी तो सब बातें है लेकिन सार तो मेरे ठाकुर का नाम ही है। और युवान भाई-बहनों, काशी के समर्थ महापुरुष मधुसूदन सरस्वतीजी महाराज ऐसा कह गये हैं, वैसे तो वेदान्ती थे। उनके शब्द हैं, 'व्यर्थ कालत्वं'; इस जीवन में व्यर्थ समय नहीं बिगाड़ना। समय नहीं बिगाड़ना और उसमें भी फिर ये बात करते हैं, अपने समय के सभी कार्य आप पूरा कीजिए। चौबीस घंटे की ओफिस, खेत, दफ्तर, मजदूरी जो कुछ हम करते हो सब पूरा हो जाये, भोजन कर लिया, अपने परिवार के साथ बैठ लिए, टी.वी. देख लिया, फोन कर लिया, जो कुछ भी आज के उपकरण हैं उन सबका सद्उपयोग कर लिया और अब आपको सोना ही है। और उस समय यदि आपको नींद न आये तो मधुसूदन सरस्वती कहते हैं, उस समय आप दो मिनट हरि का नाम लेना।

युवान भाई-बहनों, इतना आपको व्यासपीठ पर प्रेम है। आज एक बौद्धिक व्यक्ति का मुझ पर पत्र आया है कि 'बापू, दो दिन से मैं कथा देख रहा हूं। माफ कीजिएगा, पर सुनता नहीं हूं! परंतु देखा करता हूं। कभी-कभी देखता हूं। बीच-बीच में खाने जाता हूं तब भी देखता हूं। और छूटते समय भी देखता हूं। इतनी अधिक युवानी क्यों आती है, यह मुझे समझ में नहीं आता!' नहीं समझ में आयेगा, नहीं समझ में आयेगा! पर पैर पड़ता हूं इतना स्वीकार किया! ऐसा युवानों को गलत रास्ते पर नहीं लिया है। मैं कहीं ऐसा नहीं कहूंगा कि आप माला लेकर फेरा करे। वो आपको पसंद है तो करें, कोई रोक नहीं है। आपकी मुक्तता। इन गुरुओं को मोक्ष देने की जरूरत नहीं है, मुक्तता देने की आवश्यकता है। उन्हें मुक्त रखो। इन सभी शिक्षण संस्थाओं से मैं कहूंगा कि आपको जितनी फीस लेनी हो आप इन लड़कों से लीजिए। आप अपने धर्म के अनुसार संस्था जमाते हो, जो कुछ भी करते हो वो आप जानो! आप फीस भले अधिक से अधिक लीजिए परंतु वहां आते हो उन्हें फ्री रखो, उनकी मुक्तता रखो, उन आत्मचैतन्य को स्वीकार कीजिए।

महाराज दशरथजी के यहां वेदतत्त्व पुत्र के स्वरूप में आते हैं। उसी तरह कैकेयी और सुमित्रा माँ के यहां भी पुत्रों का जन्म होता है। चार पुत्रों की प्राप्ति होती है। गुरुजी नामकरण करते हैं। सब से पहले कौशल्या के अंक में श्यामवर्ण राघव को देखकर वशिष्ठजी नामकरण करते हुए कहते हैं, 'यह बालक जो आनंद का समुद्र है, सुख की खान है, जिसका नाम स्मरण करने से, नाम जपने से, नाम उच्चारण से, नाम पुकारने से इस जगत को विश्राम मिलता है। विराम और आराम की प्राप्ति होती है। इसलिए इस बालक का नाम राम रखने के लिए प्रेरित होता हूं।' वैसे तो 'राम' ये आदि-अनादि ब्रह्म है, नामब्रह्म है; कहने दीजिए, नादब्रह्म भी है। यह मेरी व्यक्तिगत निष्ठा है। 'राजन्, कैकेयी के अंक में खेल रहा यह बालक जिसका वर्ण बिल्कुल राम जैसा है, जिसकी सूरत राम से मिलती है, इसका शील मुझे राम के शील जैसा दिखता है। यह बालक जगत में किसी का शोषण नहीं करेगा, सब का पोषण करेगा, सब को भर देगा, विश्व का भरण-पोषण करेगा इसलिए इसे मैं भरत नाम देता हूं।' सुमित्रा के दो पुत्रों का नामकरण क्रम तोड़कर लक्ष्मण का नाम आखिर में लिया है। 'जिसका स्मरण करने से दुश्मनी का नाश होगा, बैर का नाश होगा, शत्रुता का नाश होगा, शत्रुका नहीं उसे मैं शत्रुघ्न कहूंगा। और तमाम लक्षणों के धाम रामप्रिय शेषनारायण के अवतार स्वरूप में समस्त जगत का आधार और जो परम उदार है ऐसे बालक का नाम मैं लक्ष्मण रखता हूं।'

चारों पुत्रों का नामकरण संस्कार हुआ है। व्यासपीठ हंमेशा कहती रही है कि पहला नाम राम ये तो महामंत्र है; और राम महामंत्र का जप अथवा राम का स्मरण, उसका लेखन जो कुछ करते हो उसे बाकी के तीन भाईयों का जो नाम है उसके अन्त:तत्त्व को पहचानना पड़ेगा। मैं और आप यदि राममंत्र का महाजाप करते हो, नाम लेते हो तो भरत के नाम का लक्षण समझना पड़ेगा। भरत सब का पोषण करता है। रामनाम जपनेवाला किसी का शोषण नहीं करता, सबका पोषण करता है। राम के नाम पर समाज का शोषण नहीं होना चाहिए, पोषण होना चाहिए। राम को भजता है वो किसी से दुश्मनी नहीं रखता; राम को भजता है वो अपनी औकात के अनुसार जितने का आधार बना जा सके उनका आधार बनता है। बड़ी हाईस्कूल न बना सके पर उसमें कोई गरीब बालक फीस के बिना शिक्षण चूकता हो तो उसकी फीस भर देनी चाहिए। यह है रामभजन का आधार। बड़ी होस्पिटल न बना सकें परंतु किसी को दवा के पैसे दे सकें। अन्नक्षेत्र न खोल सकें पर कभी परोसने जा सकें।

चारों भाई गुरु के आश्रम में विद्या प्राप्त करने गये। तुलसीदासजी कहते हैं, अल्पकाल में विद्या दे दी गई। वह कैसी शिक्षण पद्धति होगी? थोड़े में अधिक पढ़ा दिया जाए। अभी सब कुछ पढा देने के बाद भी थोडा भी कुछ नहीं निकलता! 'अल्पकाल' शब्द शिक्षण जगत को विचार करने जैसा है, वह कौन-सी मेथड होगी? कौन-सी सिस्टम होगी शिक्षण की? और पढ़ाने के कोई सब्जेक्ट सामान्य न थे! वो तो वेदों को पढ़ाना था और फिर कैसी शिक्षण पद्धति दाखिल की होगी कि अल्पकाल में सभी विद्या प्राप्त हुई! इस पर विचार होना चाहिए। जिसके श्वासोश्वास में वेद हो वो परमात्मा किसी के यहां जा कर पढ़ता होगा इसका मुझे आश्चर्य होता है। परंतु ईश्वर ने अपने जीवन को अंदर रखकर आपको-मुझको बताया कि आदमी को पढ़ना चाहिए, विद्या प्राप्त करनी चाहिए। अब तो सब पढते हैं। मैं प्रसन्न होता हूं। खूब-खूब पढ़ते हैं फिर भी अभी किसी जगह माता-पिता पढ़ने भेजते हो तो अपने बच्चों को पढ़ने भेजना और पढाना। और प्रभु ने जिसे क्षमता दी हो ऐसे लोग जो फीस के कारण अटक जाते हैं उनके अभिभावक बन कर उनके लिए सहयोग कीजिएगा। शिक्षण बढ़ें, विद्या बढ़ें यह बहुत जरूरी है। इस तरह अल्पकाल में ये उपनिषदीय विद्या प्राप्त की। उस विद्या को जीवन में उतारा है।

दिन बीतने लगे। विश्वामित्रजी को ध्यान में दिखा कि अयोध्या में वो परमतत्त्व अवतार ले चुका है। विश्वामित्रजी को हुआ, मैं अयोध्या जाऊं और उस परमतत्त्व को प्राप्त करूं। मनोरथ करते-करते विश्वामित्रजी निकले हैं। राजा के दरबार में पधारे हैं। राजा ने विश्वामित्र का पूजन किया, स्वागत किया। विश्वामित्रजी भोजन करके तृप्ति का अनुभव करके बैठे हैं। बाद में राम और लक्ष्मण आये हैं। विश्वामित्रजी राम-लक्ष्मण की मांग करते हैं। पहले वात्सल्य के कारण, ममता के कारण दशरथजी मना करते हैं। परंतु आखिर राम-लक्ष्मण महामुनि को सुप्रत होते हैं। राम-लक्ष्मण, विश्वामित्र आदि मुनिगण के साथ पदयात्रा करते हैं। भगवान राम ने अवतार कार्य का श्रीगणेश किया है। एक ही बाण से ताडका का प्राण हरा गया है। उसे निर्वाणपद दिया है। यज्ञ का आरंभ होता है। मारीच, सुबाहु दौड़कर आये! सुबाहु को निर्वाण दिया। मारीच को सागर की ओर फेंक दिया है। यज्ञ पूरा किया। एक-दो दिन राम रुके। विश्वामित्रजी ने प्रस्ताव रखा, मेरा यज्ञ तो पूरा किया। रास्ते में दूसरे यज्ञ बाकी हैं और अंत में धनुषयज्ञ जनक का। धनुष यज्ञ का नाम सुनते ही विश्वामित्रजी के साथ राम-लक्ष्मण जनकपुरी जाने के लिए निकलते हैं। यात्रा का फिर एक बार आरंभ होता है।

> इस जगत में शस्त्रों को जला डालो। पांच-दस वर्ष तो बिना शस्त्र का जगत बनाओ! मैं सतत कहता हूं कि एकाद पंचवर्षीय योजना ऐसी बनाओ कि जिसमें प्रेम ही हो। और अनुकूल न आये तो दवा बदल दीजिएगा! फिर लाठी लीजिएगा! फिर बरछी ले लेना! फिर कुल्हाडी ले लेना! फिर तलवार उठा लेना! परंतु युगों से चल रहा है फिर भी यह समाज चाहिए उतना अच्छा नहीं हुआ है। तो अब ये दवा बदलनी चाहिए साहब! अब औषधि में फेरफार होना चाहिए। और ये नई औषधि जो हम लाये वो सफल न हो तो फिर उसका वही कीजिएगा! युद्ध छल के बिना नहीं होता; युद्ध हिंसा बिना नहीं होता; मुर्दा बिना का नहीं होता।

मानस-रूखड़ : ७

रूखड़ समाज का माईलस्टोन है

'मानस-रूखड़', 'रामचरित मानस' के आधार पर इस विषय को केन्द्र में रखकर हम सब सभी साथ मिलकर इसकी थोड़ी सात्त्विक और तात्त्विक चर्चा संवादी सूर में कर रहे हैं। मेरे इस नौ दिन के प्रेम यज्ञ में कविओं ने, लेखकों ने, संतों ने, महापुरुषों ने जिसने कुछ विचार किया, जिसने कुछ अनुभव किया, जिसके पास शब्द है, जिसके पास सर्जन शक्ति है, जिसके पास चिंतन है वे सभी लोग स्नेहपूर्वक इसमें आहुतियां दे रहे हैं। जिनके पास सूर है उसने रूखड़ को बजाया है। जिसके पास स्वर है उसने रूखड़ को गाया है। जिसके पास शब्द है उसने रूखड़ का आलेखन किया है। जिसको कुछ समझ है उसने रूखड़ को समझा है। जिसकी अन्त:समझ है और जिसके आंतर् चक्षु खुल गये हैं उसने इस प्रदेश में रूखड़ का आभास भी किया है। अर्थात् अनेक तरह के रूप में रूखड़ का यहां दर्शन हो रहा है। इसमें सभी की आहुतियां हैं। इसलिए इसमें किसी को ऐसा न लगे कि हमारी चिठ्ठी रह गई और हमारा दर्शन रह गया! मैं सभी दर्शनों को वंदन करता हूं।

गत कल हमनें कथा का आरंभ ऋग्वेद के एक मंत्र से किया था। एक उर्ध्वगमन करती हुई चेतना है, उसके लिए वेद भगवान ने ऋग्वेद में जो कुछ सूत्र दिया है उसको हमनें साथ में गा कर अपनी मति अनुसार समझने की कोशिश की है। फिर से एक बार कहता हूं कि यह तथाकथित रूखड़ की चर्चा नहीं है। कल दो पक्षों की चर्चा अपनी चल रही थी उसमें उसके विषय में बहुत से प्रश्न आये इसलिए थोड़ा आगे बढ़ूं कि साधना करने में व्यक्ति स्वतंत्र है कि मुझको योगमार्ग से जाना है, मुझे यह मार्ग लेना है। इसमें अपनी रुचि, अपनी स्वतंत्रता। कोई महापुरुष भी हमारी रुचि के अनुसार साधना का मार्ग बताता है। परंतु कृपा को कोई बंधन नहीं है। कृपापक्ष ऐसा है कि जिसने अधिकतर कुछ नहीं किया उसके उपर भी बहुत कृपा होती है। पर एक वस्तु मुझे समाज के साथ चर्चा कर लेनी है कि कृपा चाहे जिस पर हो पर जिसके उपर हुई हो वे सभी हमारे आदर्श नहीं बन सकते। रावण पर भगवान की कृपा हुई परंतु रावण समाज का आदर्श नहीं हो सकता। कुंभकर्ण पर कृपा अवश्य हुई है लेकिन वो आदर्श नहीं बन सकता। इसीलिए पूरा प्रसंग 'साधु' शब्द से शुरू हुआ है। 'साधु चरित सुभ चरित कपासू ।' सस्ते में मिली हुई कृपा से तरक्की मुक्ति दे सकती है पर समाज का वो माईलस्टोन नहीं बन सकती। रूखड़ समाज का माईलस्टोन है। उसमें साधना और कृपा दोनों का मिश्रण है।

रूखड़तत्त्व मैं इस तरह बयान करूंगा कि उसने भरपूर साधना की है। मेघाणी का भौतिक रूखड़ ले तो भी उसने साधना की है। उसने इतने वर्षों परिक्रमा की है, मौजमस्ती की है। ये सब उसकी साधना है और रूखड़

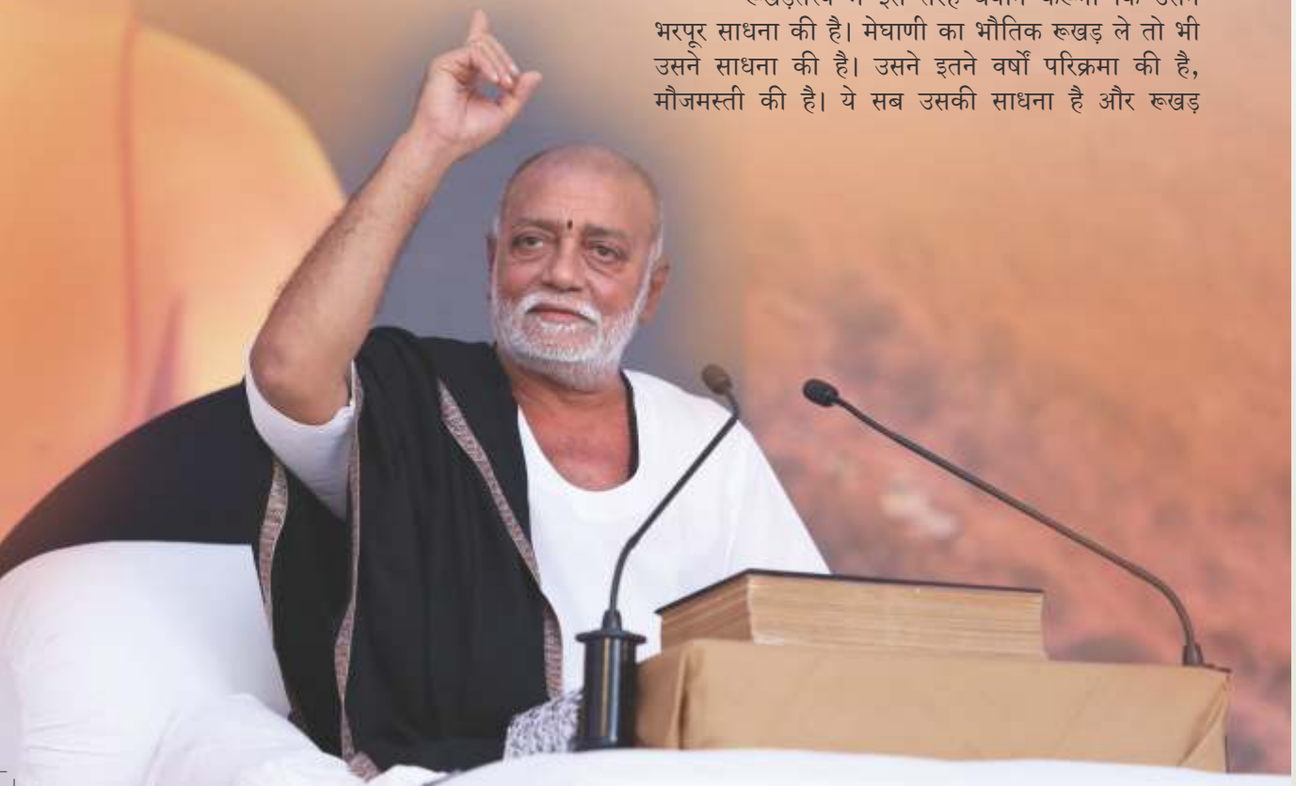

जगमगाये इसके पहले कोई परमतत्त्व उस पर जगमगा चुका है, ओलरेडी। लटकने और झुकने में बहुत ही शास्त्रीय अंतर है। मौत लटकती है और कृपा झुकती है। साधना के पात्र में जिसने हरिकृपा प्राप्त की होगी और पचाई होगी ऐसा कृपासंपन्न कोई रूखड़तत्त्व, कोई रूखड़सत्व ही समाज का आदर्श बन सकता है। इसलिए ऐसे दो पात्र कपास जैसे चरित्रवाले रूखड़ 'रामचरित मानस' में मुझे तलगाजरडी आंखों से देखना हो तो वो दोनों नीरस भी हैं, विशद भी है, गुणमय भी हैं। जिनका जीवन वैराग्यवान है। विशद अर्थात् शुभ्र, एकदम धवल। और गुणमय, कोई गुण शेष नहीं है और वे गुण उसे बांधे नहीं हैं ऐसे गुणवान दो पात्र और दोनों साधुचरित। उसमें एक हैं श्री भरत और दूसरे हैं श्री हनुमानजी। इन दोनों पात्रों को तीनों लक्षण लागू पड़ते हैं। इन दोनों पात्रों में साधना पक्ष भी है और कृपापक्ष भी है। और इसलिए भरत हमारे आदर्श बन सकते हैं। हनुमानजी हमारे आराध्य बन सकते हैं, कुंभज नहीं बन सकते, गोपी बन सकती है, कुंभकर्ण नहीं बन सकता। साधना चाहिए, भजन चाहिए।

इक्कीसवीं सदी को साधु के भजन की बहुत जरूरत है। इस काल में साधुओं को खूब भजन करना चाहिए। टूट जाये इतना भजन करना चाहिए। क्योंकि चारों तरफ कलि प्रभाव लटक रहा है! कब दबोच ले इसका पता नहीं चलता! और प्रभु की कृपा है कि अपने यहां ऐसा कुछ हो रहा है। बहुतों का भजन जाहिर है, बहुतों का भजन अप्रगट है। बहुत बोलते हैं। ओशों ऐसा कहते कि प्रसिद्धि और अनुभूति में बहुत फर्क है। बहुतों की प्रसिद्ध खूब है परंतु अनुभूति बिल्कुल नहीं! और बहुतों की अनुभूति भरपूर है पर उसे जगत में कोई पहचानता नहीं है! पूरे उपनिषद का वातावरण ही बदल गया है! आपके पास शिष्य कितने? आदमी कितने? फोलोअर्स कितने? इससे आत्मतत्त्व का अमृत नहीं मिलेगा। आपके पास साधन और रूपिया कितना है? इससे नहीं मिलेगा। आपकी कार्य प्रवृत्ति कितनी है? इससे नहीं मिलेगा। आपके त्याग से मिलेगा। ऐसा उपनिषद कहते हैं। आज अकेला आदमी, उसकी किसी को खबर ही नहीं है और शायद मुझे ऐसा लगता है कि ऐसे अकेले आदमियों ने ही बहुत संभाला है। बहुत इस गेब को आधार दिया है और बहुत-सी भीड़ों ने तो आधार तोड़ने का काम किया है!

सब से बिनती है, पूरे मेले में ये मेरे साधु-संतों की तरफ से भी कहता हूं, प्रशासन के तरफ से भी कहता हूं, कोर्पोरेशन की तरफ से भी कहता हूं, सब से बिनती है, स्वच्छता खूब रखना। इस मेले में शिस्त खूब रखना। यह साधुओं का मेला है। कहीं गंदगी न हो। ये बापू के आश्रम में हम बैठे हैं। ये जगह हमें दी है उसमें भी आप जहां-तहां गंदगी न कीजिएगा। जहां-तहां सभी वस्तुएं मत फेंकना। हम तो कल चले जायेंगे। पुनितबापू को सब साफ़ करना पड़ेगा! मैं शासन का कार्य भी हलका करना चाहता हूं। स्वच्छता अभियान हम क्यों न चलाएं? जहां-तहां कचरा न फेंके। बीमारी न हो इसका ध्यान रखें। जैसे-तैसे वाहन न चलायें। अशिस्त का आचरण स्वयंभू न करें। और जहां अपना उतारा हो वहां गंदगी न करें। कहीं भी हम चाहे जैसा कचरा न फेंके। मन का कचरा न जाये तो कोई बात नहीं पर बाहर का कचरा तो कम से कम निकाल के जाओ! अंदर का कचरा तो अभी पता नहीं, कितनी बार कथाएं करनी पड़ेगी और सुननी पड़ेगी! किसी भी जगह ऐसा न हो ऐसी आप से प्रार्थना है साहब! लोग कहते हैं, हम कहां जाएं और हमारा उतारा नहीं है और हमारे वैसा नहीं है! सब को उतारा देना ये कोई मुरारिबापू की जवाबदारी नहीं है। मैं तो कथा सुनाऊं और यजमान को कहूंगा खिलाओ; फिर आप सब को अपने अपने ढंग से लग जाना चाहिए। स्वच्छता रखनी चाहिए। गंदगी नहीं करनी चाहिए। ये हम सब का फर्ज है। खाली फरियाद करने के लिए न आयें! बहुत तो कथा में फरियाद करने ही जाते हैं, क्योंकि घर में कर नहीं पाते! घर में तो कुछ बोला नहीं जाता! सब कुछ यहां आता है! हमारी ठीकठाक रहने की व्यवस्था नहीं हैं! हमारे भोजन की व्यवस्था नहीं है! ऐसा है, वैसा है! मुझे जो समझ में आया वो एक सूत्र बहुत पसंद है कि शिकायती चित्त किसी दिन अध्यात्म की यात्रा नहीं कर सकता। वो कोर्ट की यात्रा कर सकता है, हार्ट की यात्रा नहीं कर सकता। आर्ट की यात्रा भी नहीं कर सकता। शिकायतमुक्त चित्त ही साधना में प्रवेश कर सकता है। फरियाद, फरियाद! यहां हम आये हैं संतों के दर्शन करने के लिए, संतवाणी सुनने के लिए। कथा तो इस बार है, नहीं तो हम सब मेले में ही होते। अपना हेतु क्या है? घुमे-फिरे परंतु गंदगी न करें। अस्वच्छता न करें। अशिस्त न करें। बीमारी नहीं बढ़नी चाहिए। अपने-अपने ढंग से सब कुछ करें।

तो मेरे कहने का अर्थ, इतनी संख्या में आप श्रवण कर रहे तब भजन की जरूरत है। और मैंने कल आप से बहुत कम समय मांगा है। 'व्यर्थ कालत्वम्'; मधुसूदन सरस्वतीजी की मांग, वही तलगाजरडा की मांग है कि सभी

काम पुरे हो जाये तब मेरे देश के युवा लड़की, लड़कें पांच मिनट मिले उसमें हरि को भजें। ध्यान करना हो तो ध्यान करें। योगा कीजिए। स्मरण कीजिए। तो बाप! भजन कीजिए; गंगासती कहती है कि 'जेने सदाये भजननो आहार।' जिसे सदा भजन का आहार है ऐसे संत अभी भी अपने पास हैं। भरत और हनुमान दोनों भजनानंदी, दोनों नीरस। दोनों विशद जिनके अंदर की आत्मा दोनों की उज्जवल। ऐसे दो साधुचरित्र पात्र जिन्हें हम परम रूखड़ कह सकते हैं। ऐसे दो पात्रों ने कपास जैसे शुभचरित्र बताएं हैं।

रूखड़ अर्थात् जलतत्त्व। हम पानी के साथ ही जन्मे हैं। माँ के कोठे में भी ज्यादातर पानी ही होता है। हमारा पानी के साथ संबंध है। इसलिए 'जल ही जीवन है', ऐसे सब सूत्र आते हैं। पर जल के साथ अपना संबंध है। जल से रूखड़पना समझे कि कोई भी पानी का रेला बीच में आये खड्डे को भरे बिना आगे नहीं बढ़ता। उसका स्वभाव है कि मेरे रास्ते में यदि कोई अभावग्रस्त होगा, उसे मैं पहले भर दूंगा। रूखड़ यानी अगल-बगल में जो वंचित है, उपेक्षित है, अभावग्रस्त है, जो खड्डे हैं उसे भरता जाये अपनी चेतना से और फिर आगे ही आगे बढ़े, ऐसा रूखड़तत्त्व। इसलिए 'जेम झळुंबे कूवा माथे कोस'; पूरे जलतत्त्व को वहां लिया है। साधु का जीवन भी ऐसा ही होता है।

ये कंठी बांधने की जो हरिफाई चल रही है न जहां-तहां! सद्गुरु तो खाली कंठी नहीं बांधता, कंठ पकड़ता है। उसका कंठ ही पकड़ लेता है। ये महापुरुष हैं जो किसी स्पर्धा में नहीं और जब धर्म स्पर्धा में ऊतरता है तब धर्म का जो मूल तत्त्व है श्रद्धा वो घायल होती है। इन संतों ने हमें बुलाया हैं कि आप यहां आयें। हम खिंचाकर जाते हैं क्योंकि उसे इकठ्ठा नहीं करना है। परंतु जब धर्म नेटवर्क लगाये! जड़तत्त्वरूपी रूखड़; ऐसा रूखड़ तो कहीं ज्ञान लेने जाता हो वहीं रास्ते में ही मिल जाता है। हमको रास्ते में ही इस ज्ञान की उपलब्धि हो जाये ऐसा तत्त्व हमको मिलता है।

तो बाप! समाज में बहुत से कृपावंत हैं। यह मनुष्य का शरीर ईश्वर ने दिया है ये ही बड़ी से बड़ी कृपा है। फ़िर भी बहुत से देहधारी अपने आदर्श नहीं बन सकते। भजन करेगा वहीं हमारा आदर्श बन सकेगा और इसलिए भजन करनेवाले 'रामायण' में दो पात्र, साधुचरित दो पात्र श्री भरतजी और श्री हनुमानजी हैं। एक ऐसी अवधूत दशा के ये पथिक हैं। पर ये दोनों साधुचरित महापुरुष, उनके जीवन में लक्ष्य प्राप्त करने में विघ्न आये हैं। और विघ्न आते हैं। विघ्न न आये तब तक आनंद भी नहीं आना चाहिए। विघ्न, रुकावटें, स्पीडब्रेकर ये सब न आये तब तक रूखड़त्व को आनंद नहीं आता। और मेरे भरत को, मेरे हनुमानजी को, एक को पांच विघ्न आये और दूसरे को चार विघ्न आये। कुल रूखड़ यात्रा के ये नौ विघ्न हैं। और जिसे भजन करना हो, जिसे साधना करनी हो और साधना की पूंजी बटोरकर इस जगत का शुभ करना हो, लोगों को कोई न कोई विचार देकर और सादा जीने के लिए तैयार करना हो ऐसे तमाम भजनानंदी पुरुषों को, व्यक्तियों को नौ प्रकार के विघ्नों के लिए तैयार रहना चाहिए। नहीं तैयार रहे तो भी आयेंगे। सोते हुए पकड़े जायेंगे। इसकी अपेक्षा सावधान हो कर कदम उठायें तो इन नव के नवों को लांघ सकते हैं।

साधु चरित सुभ चरित कपासू ।

और ध्यान रखिए, यहां 'चरित' शब्द है। चरित्रवान को ही विघ्न आयेगा, नाटक करनेवालों को विघ्न नहीं आता! चरित्रवान को ही मुश्किल! पहले भरतजी को लें। तुलना कीजिए-

भरत सरिस को राम सनेही ।
जगु जप राम रामु जप जेही ।।

●

महोब्बत का कानों में रस घोलते हैं।
ये ऊर्दू जूबां है, जो हम बोलते हैं।

हमारे दिल्ही के शरफसाहब की गज़ल है। उर्दू के कवि हैं। बहुत नमाजी है। ऐसा कहते हैं-

फले फूले कैसे ये गुंगी महोब्बत,
न वो बोलते हैं न हम बोलते हैं।

अब भरत को आप देखें, भरत नीरस हैं, नंदिग्राम में वल्कल पहनकर बैठ जायेंगे पर है नीरस ही।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना ।
जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ।।

थोड़ा रसिक लगते हैं, एक तरफ नीरस, एक तरफ रसिक।

राम चरन पंकज मन जासू ।
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ।।

सच्चा संत नीरस होता है इसका अर्थ यह नहीं है कि राम और कृष्ण की भक्ति में बिल्कुल उसे रस नहीं है।

उसका रस थोड़ा अलग ही होता है। 'राम चरन पंकज मन जासू।' उसे भगवान के चरण का रस चाहिए। किसी दिन साधनासंपन्न रूखासूखा नहीं होगा। उपर से दिखेगा। तुलसीदासजी का एक दोहा है-

जे जन रूखे बिषय रस चिकने राम सनेहँ ।
तुलसी ते प्रिय राम को कानन बसहिं कि गेह ।।
- दोहावली

जो विषयरस में सूखा हो और राम के स्नेह में ऐसा भीगा हो, फिर वो घर में रहे या वन में रहे, दोनों बराबर है। वो नगर में रहता हो या अरण्य में, कोई फर्क नहीं पड़ता। निर्णय नहीं कर लेना कि वन में रहता है वो पा गया है और घर में रहता है वो नहीं पाता है। निर्णय तो करना ही मत! अपनी हैसियत नहीं है निर्णय करने की। कौन कब पा लिया यह अपने को पता नहीं चलेगा। ये कपास का फूल लो तो रूई नीरस ही है न साहब! नीरस ही है; उसे पानी में भीगाओ, बत्ती बनाओ, लंबी उर्ध्व बत्ती करो और फिर जलाओ, प्रकाश होता है? नहीं होता, प्रगटित ही नहीं होगा क्योंकि पानी में उसे भीगाया है। रूई सूखी है, नीरस है। उसे पानी में भीगाओ यानी गीली होगी, वो रस है। पर जलती नहीं है परंतु घी में डाले तो प्रज्वलित होगी। साधु ऐसे होते हैं। वे पानी में नहीं भीगते पर किसी के स्नेह में भीग जाते हैं। और फिर उसका प्रकाश, उसकी ज्योत होगी। और ध्यान रखिएगा, घी जरूरी है, मक्खन का दीपक नहीं होता। मेरा तुलसी कहता है 'उत्तरकांड' में। तुलसी के शास्त्र में वैराग्य वो नवनीत है। पर मक्खन में तलछट होगी, खटास होगी। उस माखन को आप तपाएं तब जो खटास तत्त्व रह गयी है चड़-चड़ जो बोलती है, वो सब बोलना बंद हो जाता है और नारायण स्वरूप घी निकलता है फिर वो ही दीया प्रज्वलित होता है। मक्खन का लोंदा लेकर उसमें बत्ती डालें और चाहे जितना प्रयत्न कर लें तो भी दीपक नहीं होगा।

श्री भरत नीरस हैं। उन्हें अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूपी फल नहीं चाहिए पर उन्हें राम के चरणों का रस चाहिए। वो फलाहार को मना करता है परंतु रस पीने के लिए उत्सुक है। तो वो नीरस भी है और सरस भी है। जैसे ज्ञानदीपक का प्रसंग वैसे भरत के चरित्र में पांच विघ्न आये हैं। उसी प्रकार हनुमानजी के चरित्र में चार विघ्न आये हैं। ये विघ्न भजनानंदी के लिए खूब मार्गदर्शक हैं। जिसका जीवन कपास के फूल जैसा है, ऐसे जीवन के लिए ये विघ्न समझ लेना जरूरी है। महाराज दशरथजी राम के वियोग में प्राणत्याग करते हैं। भरत आये। पिता की क्रिया की। सर्वानुमत से एक निर्णय लिया गया कि हम सब ही अयोध्या से रामजी के पास जायें। ये सत्ता, ये पद वन में रघुनाथजी को सौंप दें फिर मेरा राम जो निर्णय करे सो। बाकी मैं पद का आदमी नहीं हूं, मैं पादुका का आदमी हूं। मैं सत् का आदमी हूं, सत्ता का आदमी नहीं। भरत पूरी अयोध्या को लेकर और चित्रकूट की यात्रा पर निकले हैं। इन दोनों की यात्रा में शब्द भी समान है। भरतरूपी साधुचरित कपास की यात्रा है चित्रकूट की। और हनुमानजीरूपी साधुचरित की यात्रा है त्रिकूट तक। त्रिकूट के उपर लंका बसती है। हनुमान को वहां जाना है। उनकी यात्रा का लक्ष्य त्रिकूट। भरत की यात्रा का लक्ष्य चित्रकूट। हनुमान का लक्ष्य लंका में बैठा है-भगवती सीता। और भरत का लक्ष्य चित्रकूट में बैठा है। हनुमानजी की यात्रा कथाक्रम में बाद में है। पहले भरत की यात्रा है। हनुमानजी की यात्रा 'किष्किंधा' और 'सुन्दर' में है। भरत की यात्रा 'अयोध्याकांड' में है। और इसलिए विघ्न यहां पांच, यहां चार। और ये सभी विघ्न हम यदि भजन की यात्रा करेंगे, साधना की यात्रा करेंगे, अंदर से हरिनाम में रस होगा, तो ये जगत का कोई पदार्थ मुझे और आपको बांध नहीं सकेगा।

भरत की यात्रा निकलती है। माताएं पालखी में हैं। वशिष्ठ आदि गुरुजन रथ में बैठे हैं। जिसकी जैसी योग्यता थी वैसे सभी वाहन ले कर निकलते हैं। भरतजी ने निर्णय किया कि मुझे पदयात्रा करते हुए राम तक जाना है। मेरा हरि यदि नंगे पैर गया है तो मैं रथ में कैसे बैठूं? और भरतजी का ये व्रत था। चित्रकूट की यात्रा कर रहे साधुचरित रूखड़, उसका पहला विघ्न आयेगा, व्रतभंग होगा। यह पहला विघ्न है। भरतजी पैदल चल रहे हैं। हजारों आदमी हैं पर लोगों को ऐसा लगा कि हमारा युवराज नीचे चलेगा तो हम से वाहन में कैसे बैठा जायेगा? सभी नीचे उतर गये। माँ कौशल्या को पता चला कि भरत पैदल चल रहे हैं और पूरी प्रजा राम के विरह में और महाराज के विरह में इतनी सशक्त नहीं रही है कि पैदल चलकर चित्रकूट पहुंच सके। माँ ने अपना हाथ भरत के माथे पर रखा, 'भरत, तुम नीचे चलोगे तो पूरी अयोध्या नीचे चलेगी। हमारी जवाबदारी है। बेटा, अपनी प्रजा दुःखी न हो। ये नंगे पैर सभी चलेंगे तो चित्रकूट में कितने बीमार पड़ेंगे!' 'पर माँ, मैंने तय किया था कि मुझे नंगे पैर जाना है।' 'नहीं बेटा, तुम रथ में बैठ जाओ।' और भरत को रथ में बैठना पड़ा। साधुचरित कपास जैसे शुभ्र लोग हैं

उनका पहला विघ्न है उनके व्रत में भंग पड़ेगा। हमारे व्रत में भंग कब पड़ेगा? हमारा व्रत जब जाहिर हो जाता है तब। किसी को पता न चले ऐसा व्रत रखो तो कभी भी भंग नहीं पड़ेगा। पर हमें तो व्रत रखने की अपेक्षा दूसरे को पता चलना चाहिए कि आज मेरा उपवास है! हमारा व्रत जाहिर नहीं होना चाहिए। बाप! जिसे हरि भजना हो उसे व्रत हो सके वहां तक गुप्त रखना चाहिए। यद्यपि हमारा कोई व्रत होता भी नहीं है! फिर भी उसे जाहिर करने से उसमें विघ्न आयेंगे। भरत का व्रत भंग हुआ।

कपास जैसे साधुचरित व्यक्ति को दूसरा विघ्न शृंगबेरपुर के किनारे आया है। और वो था गुह आदि शृंगबेरपुर के भील भरत के लिए गलतफहमी करते हैं कि ये कैकेयी का पुत्र आ रहा है, निश्चित हमारे राम को अकेले देख और परास्त करके और निष्कंटक राज करने के लिए आ रहा है! और यदि हम राम के आदमी हैं तो नौका को गंगा में डुबा दें! भरत का एक भी आदमी गंगा पार नहीं होना चाहिए। ये दूसरा विघ्न मुझे चित्रकूट यात्रा का लगा है कि जब आदमी चित्रकूट की तरफ अधिक से अधिक आगे अग्रेसर हो तब बीच में आनेवाला समाज हमारे लिए गलतफहमी करता है कि ये फिर कहां का भगत? ये फिर कहां का संत हो गया? ये फिर क्या? उसका इरादा कुछ अलग ही होगा! ऐसा करके ये विघ्न आता है वो समाज द्वारा होनेवाली गलतफहमी है। भरत उसमें से पार उतरे। प्रयाग पहुंचे। भरद्वाजऋषि के यहां आश्रम में उतारा हुआ। और भरद्वाजजी को ऐसा हुआ कि भरतजी की सेवा करें। फिर रिद्धि-सिद्धि आयी। इतने अधिक भोग उत्पन्न की हैं रिद्धि-सिद्धि ने। अयोध्या के सभी आदमी अपनी मानसिकता के अनुसार उस सुख में डूबे हैं। भरद्वाज की खड़ी की हुई संपत्ति चकवी थी और भरत चकवा थे। आश्रमरूपी पिंजड़े में इकठ्ठा किए पर चकवा ने चकवी पर दृष्टि न की और चकवी चकवा पर प्रभाव न डाल सकी। भरत अखंड हरिनाम जपते रहे।

यह तीसरा विघ्न कि कभी साधु-संत भी हमारी कसौटी करते हैं। परंतु जिसका रामभजन प्रबल हो वो उसमें से भी पार उतर जाते हैं। और चौथा विघ्न है, आकाश से दैवी विघ्न कि जिसको सुरी विघ्न कह सकते हैं। बृहस्पति को इन्द्र ने कहा कि महाराज, आप कुछ ऐसा कीजिए कि राम-भरत का मिलाप ही न हो! होगा तो हमारी बाजी बिगड़ जायेगी! और फिर गुरुदेव बृहस्पति इन्द्र को समझाते हैं कि हे देवराज, थोड़ी ठीक से देखना सीखो! राम के स्वभाव का तुम्हें पता है? उनका तुम चाहे जितना बिगाड़ो तो उन्हें गुस्सा नहीं आयेगा परंतु यदि उनके संत को तुमने पीड़ा दी तो राम के क्रोध की अग्नि में तुम जल जाओगे। इन्द्र, तुम्हारा इन्द्रत्व सुरक्षित नहीं रहेगा! समाज याद रखे, परमात्मा को शायद हम अवगणना करें तो कोई मुश्किल नहीं होगी पर परमात्मा जिससे प्रेम करता हो ऐसे साधु का जिस दिन दिल दु:खाया उसी दिन 'रामरोष पावक सोई।' ये धमकी नहीं है, बृहस्पति की ये सावधानी है। हमें केरफूल करते हैं, जागृत करते हैं। मेरे कहने का अर्थ, रामयात्रा में साधक के लिए चौथा विघ्न है देवताओं के द्वारा। पर अपना भजन ठीक होगा तो कोई न कोई देव-गुरु विघ्नकर्ताओं को समझायेंगे कि रहने दो, ऐसा कदम मत उठाओ।

अब चित्रकूट नजदीक है। भरत ऐसे कूदने लगे कि चित्रकूट आ गया! मेरा राम मुझ से मिलेगा! भरतजी को अब चित्रकूट के दर्शन हो रहे हैं। अब राम से मिलना होगा। इधर इतनी बड़ी संख्या उतरी है कि सभी वाहनों के कारण आकाश में धूल की आंधी चढ़ने लगी। पशु-पक्षी भयभीत हो राम के चित्रकूट में आने लगे हैं! परमात्मा का सत्संग चल रहा था। भगवान को ऐसा हुआ कि ये निर्दोष पशु-पक्षी भयभीत होकर आश्रम में क्यों आ रहे हैं? इतनी अधिक धूल क्यों उड़ रही है? तभी वे भील चित्रकूट के आसपास से दौड़ते हुए आये और कहे कि प्रभु, अयोध्या के दो राजकुमार भरत और शत्रुघ्न पूरी अयोध्या को लेकर आ रहे हैं। इसलिए ये सब पक्षी और पशु भागे हैं, ये धूल उड़ रही है। अब भगवान के चित्त का चित्र जो तुलसी ने अंकित किया है! भगवान खड़े हैं और उनके कान में 'भरत' शब्द पड़ता है और तुलसी लिखते हैं, 'सुनत सुमंगल बैन', ऐसा मंगल बैन सुना वहां तो 'मन प्रमोद तन पुलक भर', शरीर में पुलकावली और अच्छे से तुलसी ने देखा 'सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल।' शरद ऋतु की सुबह के खीले कमल जैसी आंखों में प्रेम के आंसू आ गये! पर दूसरे क्षण चिंतित हुए कि भरत के आगमन का कारण क्या होगा? किस लिए आ रहा है? उसके मन में कोई अन्य भाव जगा होगा? हेतु क्या होगा? पर फिर प्रभु स्वगत हुए हैं, नहीं, नहीं, भरत तो साधु है। 'साधु चरित सुभ चरित कपासू।' भरत साधु है। उसके मन में कोई अन्य भाव हो ही नहीं सकता। यह समाधान ले कर भगवान फिर बैठ गये।

सुमित्रानंदन जो जाग्रत रहने का व्रत लेकर बैठे हैं, वे लक्ष्मण राम के चेहरे की बदलती रेखाओं को देखे

और लक्ष्मणजी से रहा नहीं गया! वो तो शेष के अवतार हैं साहब! खड़े हुए और फिर प्रभु को कहे, आज मुझे माफ कीजिए ठाकुर, आप से पूछे बिना मैं वचन बोलता नहीं हूं। आज मुझे माफ कीजिए, अभी भीलों ने कहा कि भरत-शत्रुघ्न आ रहे हैं। स्वागत है प्रभु उनका, परंतु चतुरंगी सेना किस लिए ला रहे हैं? उन्हें निष्कंटक राज करना है। और महाराज, उसका दोष नहीं है; विष की लता पर अमृत का फल नहीं आता! एक क्षण ऐसा आया कि ऐसा बोल गये कि आज राम के एक अनुज के रूप में, राम के एक सेवक के रूप में कहता हूं कि आज मैं भरत को जीवित नहीं रहने दूंगा! मैं उसको छोडूंगा नहीं! ऐसा वचन भाई बोल रहा है यह राम से कैसे सहन होता? मेरे कहने का अर्थ यह है कि हरि की प्राप्ति के लिए भजनानंदी साधु चित्रकूटी यात्रा करता है उस समय आपके परिवार में से नजदीक से नजदीक का व्यक्ति आपका विरोध करता है, इतना ही नहीं वो संकल्प करता है कि मैं इसे मार डालूंगा तब समझना चाहिए कि अब हरि निकट में हैं। उस समय टिकना मुश्किल है। मीरां को राणा का विरोध! प्रहलाद को बाप का विरोध! गोपीजनों को उनके पतियों का विरोध! ये नजदीक के लोगों ने ही विरोध किया है! पर उस समय टिकना मुश्किल है। राम को पसंद नहीं आया भरत को मार डालने की बात करता है ये पर उलाहना कैसे देते हैं? कहा, तुम्हारी बात बहुत सही है कि राजमद से अच्छे अच्छे होश खो देते हैं। फिर धीरे से टर्न करते हैं कि भाई, विषयी को राजमद आते देर नहीं लगती, उसे मद आता है पर मैं तुम्हें इतना ही कहता हूं कि अपने भरत को राजमद नहीं आयेगा। भरत क्षत्रिय नहीं है लक्ष्मण, भरत साधु है। वो वर्णाश्रम से परे है। अपने रघुवंश के तालाब में हम चार भाई हैं बाप! पर आज लक्ष्मण, मुझे कहने दो-

भरतु हंस रबिबंस तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।।

भाई, हम चार भाईयों में भरत हंस है। पर भगवान से फिर रहा नहीं गया इसलिए कहा लक्ष्मण, पहली बार कहता हूं-

लखन तुम्हार सपथ पितु आना।

आज राम को कहना है कि मेरा भरत साधु हैं; मेरे भाई के मन में इस संत के विषय में गलतफहमी नहीं रहनी चाहिए। लक्ष्मण, बाप! मेरी जीभ नहीं उठती पर आज मेरे भाई लक्ष्मण की सौगंध है और मुझे अपने पिता की आन है, इस विश्व में पवित्र और उज्वल भरत जैसा भाई विश्व में कोई नहीं है। ये मेरी प्रतिज्ञा है। मूल तो कपास का जो रूखड़ है, वो जो फूल है, वो साधुचरित भरत के साथ समानता की तुलसी ने। इसलिए ये कथा कही है। अंतिम विघ्न है प्रभुप्राप्ति का कि परिवार का व्यक्ति विरोध करता है। केवल विरोध नहीं, मार डालने तक का विरोध! जिसस क्राईस्ट को साहब, दो-तीन चांदी के सिक्के में उसका शिष्य जुडास पहचनवा देता है और जिसस पकड़े जाते हैं। जिसस शूली पर चढें! नजदीक का आदमी ऐसा करता है! उर्दू का वो शे'र है न-

आग तो अपने ही लगा देते हैं।
गैर तो सिर्फ़ हवा देते हैं।

माचिस तो नजदीक के ही लगाते हैं! वो तो दूर खड़े-खड़े थोड़ी हवा फूंकता हैं!

तो भजनानंदी साधु की चित्रकूट यात्रा में पांच विघ्न हैं। जिसे भजन करना हो उसे तैयारी रखनी चाहिए। इतने विघ्न आयेंगे। और विघ्न आने के बाद में विश्राम आता है उसमें ही ओडकार होती है। तो साधुचरित कपास जैसा चरित्र है वैसा 'रामायण' का रूखड़ भरत और वैसा ही रूखड़ हनुमानजी। उनके जीवन में चार विघ्न आते हैं। उसकी बात कल करेंगे।

साधना करने में व्यक्ति स्वतंत्र है कि मुझको योगमार्ग से जाना है, मुझे यह मार्ग लेना है। इसमें अपनी रुचि है, अपनी स्वतंत्रता। कृपा को कोई बंधन नहीं है। कृपापक्ष ऐसा है कि जिसने अधिकतर कुछ नहीं किया, उसके उपर भी बहुत कृपा होती है। परंतु एक बात मुझे समाज से कहनी है कि कृपा चाहे जिस पर हो पर जिस पर हुई हो वे सभी हमारे आदर्श नहीं हो सकते। रावण पर भगवान की कृपा हुई पर रावण समाज का आदर्श नहीं बन सकता। आदर्श तो वही बन सकता है जिसमें साधुता है। रास्ते में मिल गयी कृपा से हुई तरक्की मुक्ति दे सकती है पर समाज का वो माईलस्टोन नहीं बन सकता। रूखड़ समाज का माईलस्टोन है। उसमें साधना और कृपा दोनों का मिश्रण है।

हनुमान और भरत रूखड़त्व प्राप्त किए हुए महापुरुष हैं

'मानस-रूखड़' 'रामचरित मानस' के अंतर्गत जो रुखड़त्व का संकेत पड़ा है उसे गुरुकृपा से ग्रहण करके, इस नगर की जूनागढ़ की नवदिवसीय रामकथा के केन्द्रस्थान में रखकर हम सब सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं। वैसे 'पुष्कल' शब्द को प्रयुक्त करूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, इतना अधिक रूखड़ के लिए साहित्य मिल रहा है। गांव के किसी मूढ़ज्ञ आदमी का भी अपना एक रूखड़ है और साक्षर का भी। कितना सब आ रहा है! रूखड़ के विषय में प्रश्न भी अधिक है। रूखड़ को अपना कोई प्रश्न नहीं है! और जिसको कोई प्रश्न नहीं है उसको ही शायद रूखड़ कह सकते हैं। जिसको हंमेशा प्रश्न ही प्रश्न हो वो शायद भूखड़ हो सकेगा! भूखड़ का मतलब है अनेक संशय ये ग्रस्त। जिसको प्रत्येक बात में वहम होता है। कभी-कभी उसे अपने अस्तित्व के लिए भी वहम उत्पन्न होता है।

फिर से एक बार कहता हूं कि यहां जिस रूखड़ की वंदना हो रही है वो तथाकथित, उपेक्षित या मजाक में जिसे लोग धुत्कारते हैं, ऐसे अर्थ में व्यासपीठ पर रूखड़ का दर्शन नहीं है। जब मैं 'रामायण' के भरत को रूखड़ कह रहा हूं तब आपको समझना चाहिए कि रूखड़ की कितनी बड़ी ऊंचाई है! तुलसी ने बड़े से बड़ा काम यह किया कि रूखड़ की व्याख्या करने के लिए उन्होंने सात सूत्र दिए। जो भूमिका में दो पंक्तियां हमने ली है उसी में रूखड़ की समग्र परिभाषा समाहित है। एक समय ऐसा था कि 'रूखड़' शब्द किसी के लिए प्रयुक्त करते तो उसे अपमान लगता। आज गिरनार की कृपा से 'रूखड़' शब्द सम्मानित हुआ है। सब मुझसे पूछते हैं कि बापू, हम रूखड़ बन सकते हैं? अब रूखड़ बनने की चाह जगी है। रूखड़ होने की एक भानना हममें जगी है। परंतु ये सरल नहीं है यह पद बहुत मुश्किल है, कठिन है। और तुलसी ने सात सूत्रों में रूखड़ की परिभाषा दी है। इन सात सूत्रों की प्रयोगशाला में हम अपनी जात को शुद्ध कर सके तो जगत को कहने की जरूरत नहीं है। एक ओडकार ले सकेंगे कि मैं भी उसी रूखड़ परंपरा का रूखड़त्व लेकर जी रहा हूं। बहुत सीधे-सादे सूत्र हैं।

साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू।।

'कपास' शब्द ही मेरे लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण है। तुलसी ने योजना की है इसलिए भी हो सकता है; मैं खादी पहनता हूं इसलिए भी हो सकता है; मुझको गांधी पर बहुत ही आस्था है इसलिए भी हो सकता है। और 'रामायण' में भी भरतजी कातते थे, कपड़ा बुनने थे और बुना हुआ वस्त्र भरतजी सुग्रीव को ओढ़ाते थे, ऐसा लिखा है। हम सबका नाता कपास के साथ है। आज करीब-करीब पचपन वर्ष से 'रामायण' लेकर मैं इसी पृथ्वी पर घूम रहा हूं। और मुझे आनंद है कि मैं लगभग उन्नीस सौ साठ में पहली रामकथा की एक महिने की अपने गांव में, तलगाजरडा में। फिर पांच वर्ष तक हर वर्ष एक-एक

महिने की कथा मैंने तलगाजरड़ा में किया, पांच कथा। इसलिए बहुत-से लोग ऐसा कहते हैं कि बापू हमारे यहां कथा करने आये न तब से ही उनकी चल पड़ी! ऐसा नहीं है। मेरी पहले से ही चल पड़ी है। मैं विवेकपूर्वक कभी सफाई देता हूं। मैंने पांच कथा तलगाजरडा में भी किया है। तलगाजरडा के बाहर पहली कथा और कथाक्रम में छठ्ठी कथा मैंने गिरनार की तलहटी में की है। और मेरी वहां की गई पहली कथा अर्थात् छठ्ठी कथा। इसका मुझे आनंद है पर मेरा मूल तलगाजरडा है। हां, मेरा घराना तलगाजरडा है। इसलिए फिर अहोभाव से कहना आप कि अमरेली में कथा की इसलिए चल पड़ी! मुंबईवाले कहेंगे कि मुंबई आये इसलिए चल पड़ी!

मेरे कहने का अर्थ है कि इतना मेरा पृथ्वी का परिभ्रमण रामकथा के साथ है और उस सबका एक ही निचोड़ है, यानी कि निचोड़ मोरारिबापू का नहीं, सभी ऋषिमुनियों का निचोड़ है। इन बातों का पहले मुझे पता न था इससे पहले विनोबाजी ओलरेडी कितनी बार कह चुके हैं। मौन थे तब विनोबाजी बैठे-बैठे लिखते रहते थे 'सत्य, प्रेम, करुणा'; 'सत्य, प्रेम, करुणा' पर मुझे ये बाद में खबर पड़ी। और जब खबर पड़ी कि विनोबाजी भी इन्हीं सूत्रों को गुनगुनाते हैं तब मुझको बहुत बल मिला। पर इस पचपन वर्ष की यात्रा का जो निचोड़ है वो सत्य, प्रेम और करुणा। और वो कपास में समाई है। कपास का 'क' अक्षर करुणा का प्रतीक है। कपास का 'प' नाम का अक्षर वो प्रेम का प्रतीक है और कपास का 'स' अक्षर सत्य का प्रतीक है। ऊलटी गति है। मैं कहता रहता हूं सत्य, प्रेम, करुणा। पर ऐसे सीधे बोलने से सिद्ध होंगे, ऊलटा बोलने से शुद्ध होंगे। इसलिए 'कपास' शब्द बहुत ही महत्त्व का है। 'क' यानी करुणा, 'प' यानी प्रेम, 'स' यानी सत्य। दो-पांच लोगों ने तो मुझे ऐसा कहा कि बापू, हमारी सरनेम बदल डालो, रूखड़ कर डालो! यह अभी जो हलचल हुई है! जो शब्द एकदम अपमानित माना जाता है, संतों की कृपा से आज सभी को पसंद आने लगा है। तो इस रूखड़त्व के, रूखड़पन के सात लक्षण। जिसकी बार-बार संदर्भभेद के साथ हम सब चर्चा कर रहे हैं।

रूखड़त्व का, एक मस्तमौला संतत्व का, एक बाउलपना का, एक सूफीपना का, एक अवधूती का, एक भिक्खू का, पहला लक्षण तुलसी कहते, नीरस, अनासक्ति। अधिक व्याख्या नहीं करनी है। जिस व्यक्ति में हमें ऐसा लगे कि ये व्यक्ति अत्यंत अनासक्त है; है सबके बीच और फिर भी हमारी आत्मा अंदर से हमें प्रमाण दे कि नहीं, समझने में भूल मत कर, वो सबमें रस लेता है, रससिक्त है, परंतु रस से विरक्त भी है, तो समझना चाहिए कि वो रूखड़ है। मुझे कहने दीजिए, नरसिंह मेहता गृहस्थ होने पर भी वो नीरस है। और फिर भी -

प्रेमरस पाने तुं मोरना पिच्छधर।
तत्त्वनुं टूंपणुं तुच्छ लागे।

ये उसमें है। कोई भी साधक, कोई भी भेख भगवान उसके लिए बहुत जल्दी निर्णय मत करो कि वो आसक्त है कि अनासक्त है। अपनी अन्तरात्मा को बोलने दो। सत्संग द्वारा जिसकी दृष्टि में थोड़ा भी विवेक आया होगा उसको रूखड़ को पहचानने की सुविधा प्रारंभ होगी क्योंकि उसे पता चलेगा कि ये तत्त्व जगत के बीच है फिर भी अनासक्त है। जैसे गांधीबापू, संपूर्ण अनासक्तियोग में इस मनुष्य के जीवन पूरा किया। और फिर भी वे गृहस्थ थे।

कुछएक प्रश्न है, उसमें एक भाई ने एक प्रश्न पूछा है, 'बापू, मेरा ताजा लग्न हुआ है।' सावधान! मोरारिबापू सावधान करते हैं। 'बापू, ताजा लग्न हुआ है। कथा में हम दोनों आये हैं! और सुंदर दांपत्यजीवन जीने के लिए कुछ कहिए। और रूखड़ की इस चर्चा में शायद हम भी ऐसी मस्ती प्राप्त कर सके ऐसा गृहस्थाश्रम के विषय में कुछ कहें।' उसने तो अपना नाम रूखड़ कर ही डाला है! पर तुम जिससे विवाह किए हो उससे पूछकर नाम रखना! मेरी इतनी ही सलाह है। कथा में आये इसलिए स्वागत है। बाकी इतनी जल्दी भी कथा में आने की जरूरत नहीं है। थोड़े घूम आओ कहीं पहले। बहुत व्यवहार की बात कर रहा हूं। पर तुम आये हो इसलिए स्वागत बाप, धन्य है! कथाप्रीति पैर लगता हूं। मुझको नहीं कहना पड़ेगा। गृहस्थ जीवन के दस सूत्र समझ जाओ। दस वस्तु हो उनका जीवन धन्य है।

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधिय: कान्ता प्रियभाषिणी
सन्मित्रं सधनं स्वयोषिति रति: चाज्ञापरा: सेवका:।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधो: संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रम:।।

चाणक्य कहता है, एक श्लोक में दस सूत्र है हम जैसों के लिए, जिसको गृहस्थाश्रम धन्य बनाकर थोड़ा रूखड़त्व का रस लेना हो संसार में रह करके। नीरस बिल्कुल नहीं बनना है पर ऐसे धीरे-धीरे अवस्था हो तब सबसे पर होते जाना है। फिर भी धवलता, उज्वलता नहीं छोड़ना है और सद्गुणों को संभाल रखना है। इससे अधिक मुझे नहीं लगता कि गृहस्थाश्रम की फार्मूला सरल हो सके। 'सानन्द सदनं'; जिसके घर सदा आनंद हो उसका गृहस्थाश्रम धन्य है।

आनंद दो तरह से होता है। घर में संप हो और संतोष हो तब अधिक कुछ करना ही नहीं है। आप चार-पांच लोग हो घर में उनमें संप हो और एक-दूसरे को एक-दूसरे से संतोष हो तो 'सानन्दं सदनं'; गृहस्थाश्रम का पहला लक्षण। पर नहीं है! लगभग अधिकतर नहीं है! क्योंकि संप नहीं है और एक दूसरे के स्वभाव से एक-दूसरे को संतोष नहीं है। घर में श्रद्धा नाम की भवानी नहीं है, विश्वास नाम का शंकर नहीं है। और केवल स्पर्धा के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। नहीं तो सूत्र बहुत आसान है बाप!

बहुत लंबे आध्यात्मिक सूत्र नहीं है। संप रखे और संतोष रखे। और अपने बालक बुद्धिमान हो, उनका गृहस्थ जीवन धन्य है। अपनी संतानों लड़के-लड़की, हमें देखकर ऐसा लगे कि क्या स्मार्ट है! क्या उसकी बुद्धि है! जो कहे वो रिसिव कर लेता है। और वैसे आज समय है उसकी अपेक्षा पचास वर्ष आगे का जी रहे हो ऐसी संतानें, आज के लड़के, बच्चे खूब ही तेजस्वी होते जा रहे हैं! और ये भगवान की कृपा है। बुद्धिमान जिनकी संतान हो। और बहुत सुंदर सूत्र, बहुत उपयोगी, कठिन भी, 'कान्ता प्रियभाषिनी।' धर्मपत्नी प्रिय बोलती हो घर में। जिस घर में स्त्री प्रियवादिनी हो वो घर धन्य है। बहुत मुश्किल है! आज युवानी में दांपत्य बहुत बिगड़ता जा रहा है। कारण समझ में नहीं आता। यह तीसरा सूत्र है, जिसके घर में प्रियवादिनी स्त्री हो। और कितना प्रेक्टिकल है चाणक्य! 'सन्मित्रं सधनं', अच्छे मित्र हो और हमें जितनी जरूरत हो उतना अपने घर में धन हो। जरूरत हो उतने ठाकुरजी ने हमारे पुरुषार्थ से पैसा दिया हो। हमको ऐसा लगे कि भविष्य में भी इन सबका बराबर आयोजन कर सकूंगा, इतना धन हो, जीवन धन्य। 'स्वयोषिति रतिः।' पति-पत्नी में प्रेम और पति व पत्नी दोनों एक-दूसरे से संतुष्ट हो। और 'आज्ञा पराः सेवकाः।' हमारे घर में जो सेवक काम करते हो, अपने घर के मेम्बर रूप हो वे आज्ञा का पालन करते हो। मैं आप-से बिनती करता हूं, घर में सुविधा हो तो कोई काम करते हो। भाई-बहन, तो उन्हें घर का सदस्य मानना। उन्हें कामवाला न मानना। यह शब्द निकल आना चाहिए। वो कामवाले नहीं है। उनकी मजबूरी है इसलिए तुम्हारे घर बर्तन मांजते हैं।

मैं इन धनवानों से कहता हूं कि आप देवस्थानों में पैसा दें। दें, अवश्य दें। आश्रमों में पैसा दें, अवश्य दें। अच्छे कार्य साधु-संत करते हो उसमें दें। आप मंदिर बंधवा दें तो बहुत अच्छा, आपके पैर लगता हूं! पर आपके घर में जो नौकर पोता करता है उसका आप दो रूम का रसोई घर क्यों नहीं बनवा देते? दो रूम नहीं एक रूम। एक रूम, एक रसोईघर, शौचालय। साहब, एक रूम, एक ओसरी और एक रसोईघर करे तो उसे ऐसा लगेगा कि आज 'सुरसदन' में बैठा हूं। ये मुझको और आपको करना पड़ेगा। और मुझे आनंद है कि रामकथा सुनने के बाद बहुत से सम्पन्न परिवार ऐसा करते हैं। मंदिर बनाओ, अवश्य बनाने चाहिए। जहां न हो वहां तो बनने ही चाहिए। अतिरेक की आवश्यकता भी नहीं है। जीर्ण हो गया हो उसका जीर्णोद्धार होना चाहिए। मंदिर हमारी संस्कृति में बहुत ही संदेशवाहक है। ये मंदिरों का देश है। पर जीवित देवता मंदिर बिना के कहीं जैसे-तैसे न रह जाए इसका ध्यान रखिएगा। ये बड़ी-बड़ी फेक्टरियां जो रखते हैं न उन्हें दोपहर को अपने वर्कर्स को अपनी फेक्टरी में भोजन कराना चाहिए। आप देखोगे, धीरे-धीरे वे आपके हो जायेंगे आपकी रोटी खायेंगे तब। और इस वस्तु का बहुत बड़ा मेसेज गया है। मैं कितने संपन्न आदमियों को देखता हूं, उनकी फेक्टरी में या अनेक घर काम करते हो उन्हें दोपहर में भोजन उनकी ओर से प्रसाद स्वरूप वितरित होता है। ये सब अच्छा है।

गृहस्थाश्रम का आगे का लक्षण है, 'आतिथ्यं'; रोज घर पर कोई न कोई अतिथि जीमता होगा, ये तो अपने देश की अद्‌भुत परंपरा है। कभी भी कोई आया हो और हम रोटी दे ये दिव्य गृहस्थाश्रम का एक लक्षण है। 'शिवपूजनं'; आहाहा! मुझे बहुत पसंद है, जिसके घरमें शिव की पूजा होती है। शिव सबका है। राम-कृष्ण को भजे और शिव को न भजे तो ये भक्ति का दंभ ही कहलायेगा, निर्मल भक्ति नहीं कहलायेगी। चलिए, शंकर की बात छोड़ दें। शिव का अर्थ होता है कल्याण, जिसके घर में कल्याणकारी विचारों की रोज पूजा होती हो; कल्याणकारी सूत्रों का रोज अभिषेक होता हो, कल्याणकारी विचारों से घर भरा हो। बाकी, शिव, शिव है। हां, मैं वैसे हूं कृष्ण उपासक; निम्बार्की हूं साहब! हमारे में राधाकृष्ण की उपासना होती है। रोटी राम की खाता हूं पर मेरा जितना लाड शंकर के साथ है उतना किसी के साथ नहीं साहब! शंकर शंकर है साहब!

परमअर्थ में रूखड़ की जो चर्चा चल रही है वैसा इस जगत का कोई आदि रूखड़ हो तो महादेव है। इसके जो रूखड़ी सूत्र है, उसे मैं सिद्ध कर सकता हूं। 'जोगी'; शब्दकोश के आधार पर योगी की एक जात का नाम रूखड़ है। और शंकर 'रामायण' में जोगी जटिल है। मस्त अवधूती इस रूखड़ का लक्षण है। 'अकाम'; कोई कामना नहीं, जगत में सबका कल्याण, कल्याण, कल्याण। 'नमन',

नमन अर्थात् आरपार, ट्रान्सपरन्सी; जैसा अन्दर वैसा बाहर, जैसा बाहर वैसा अंदर। नग्नता अर्थात् शंकर कपड़ा ही नहीं पहनते ये ही तो है उसकी शोभा। ओशो तो कहता है कि नग्नता का भी एक सौन्दर्य है, दिगम्बरी की एक महिमा है। और उदासीन जिसकी वृत्ति है कायम। हर्ष नहीं, शोक नहीं। और किसी भी माँ-बाप के यहां जन्मा है। और फिर वापस कहीं जो ऐसी व्यवस्था होगी तो जन्म लेगा, पर फिर भी जिसे भान है अष्टावक्र की तरह कि मैं कभी भी जन्मा नहीं, मैं कभी भी मरता नहीं। ये अजन्मा तत्त्व वो रूखड़ तत्त्व है। जो बिलकुल निर्गुण है, जो अजन्मा है, उदासीन है, जिसे किसी दिन कभी मन में संशय पैदा नहीं हुआ। जिसे कोई प्रश्न नहीं। ये रूखड़त्व है। और शिव ऐसा तत्त्व है कि उसके साथ लाड बहुत हो सकता है। राम के समीप मर्यादा अड़चन है। ध्यान रखकर बोलना पड़ता है साहब! मर्यादापुरुषोत्तम है। और कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम है। पर उनके साथ भी मिलना, उनकी रास में शरीक होना बहुत कठिन है। भोले की गोद में बैठकर उनकी दाढ़ी खींच सकते हैं! भोले, भोले हैं साहब! शिव ऐसा भोला तत्त्व है; उसके साथ लाड हो सकता है, उसके साथ अन्य कोई चिन्ता नहीं; ऐसा एक तत्त्व, ऐसा परमेश्वर, ऐसा ईश्वर, ऐसा ईशान, ऐसा भगवान, ऐसा ब्रह्म। शंकर के लिए क्या कहूं! उन्हें उलाहना दे सकते है। हां, उनकी दाढ़ी खींच सकते हैं। बहुतों ने उन्हें गाली दी है। पर उन्हें खबर है कि मैं शिव हूं, तुम जीव हो। तुम रूठ सकते हो, मुझसे रूठना न होगा। मैं शिव हूं।

'प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे।' जिसके घर में रोज एक-दो मिष्टान बनता हो वो गृहस्थाश्रम धन्य है। इसका अर्थ, मिष्टान हम कब बनाते हैं? कोई मेहमान आता है तब। अर्थात् जिसके घर कोई न कोई मेहमान आता हो। फिर तत्काल कुछ न हो तो हम सेव-सेवई बना डालते हैं। घी-गुड़ दे देते हैं अथवा तो प्रसाद स्वादिष्ट हो। ठाकुरजी के प्रसाद स्वरूप जो भोजन करते हो। पर ये सभी लक्षण होने चाहिए। और हे युवक, जीवन की धन्यता के लिए, गृहस्थाश्रम की धन्यता के लिए आखिरी और दसवां सूत्र बहुत ही आवश्यक, 'साधोः संगमुपासते', घर में 'रामायण' का पाठ हो, 'भगवद्‌गीता' का पाठ हो, 'भागवत' का पाठ हो; किसी संत-साधु की चर्चा हो, कोई सत्संग हो, उसका गृहस्थ जीवन धन्य है। ऐसा हम कर सकते हैं, ऐसे सब सूत्र है। इसमें दूसरा कुछ करने की जरूरत ही नहीं है, हां! अष्टांगयोग अद्‌भुत है पर ऐसा करने में अष्टांगयोग की कोई जरूरत नहीं पड़ती कि आसन करे, प्रत्याहार करे और फलाना करे और! वो तो योगगुरु से पूछकर हम करे पर इस जीवन में जीने के सूत्र में ऐसा हम तुरंत कर सकते हैं करना हो तो। इसलिए लोगों की इच्छा अब होने लगी है कि हमारी अटक रूखड़ रख दो! सभी को अब रूखड़ ही बनना है! रूखड़ संमानित हुआ है। रूखड़त्व की आरती ऊतरती है!

तो बाप! रूखड़ के जो लक्षण तुलसीदासजी ने बताया, पहला 'नीरस'; अनासक्ति योग यह रूखड़ का पहला लक्षण है। 'बिसद' यानी धवलता, शुभ्रता, उज्वलता, अंदर से शुद्धता, भीतरी पवित्रता। और 'गुनमय फल जासू।' मैंने पहले भी कहा है कि कपास के फूल में जो रेसे होते हैं, रेसों को संस्कृत में गुण कहते हैं। रूखड़त्व का ये तीसरा लक्षण है, जो गुणमयी हो। वो गुणातीत हो फिर भी संसार में रहने के लिए वो गुनमयी है। हमें तो तीनों गुण में रहना पड़ेगा कारण कि हम सबको संसार व्यवहार निभाना होता है इसलिए हममें थोड़ा रजोगुण जरूरी है। अपने बच्चे मर्यादा न चूक जाय इसलिए अंदर से खूब प्रेम होते हुए भी थोड़ी तमोगुण रखकर हमें उलाहना देना पड़ता है बस हां, ओ भाई, अब बंद कर! तमोगुण होगा वो खड़ा ही नहीं होगा! रजोगुण होगा वो किसी दिन बैठेगा ही नहीं! सत्त्वगुणी होगा वो जब बैठना होगा तब बैठेगा और खड़ा होना होगा तब खड़ा होगा। और गुणातीत बैठा होगा तो चलता होगा और चलता होगा तो भी बैठा होगा। ये गुणातीत की व्याख्या है। हमें ऐसा लगता है, रमण महर्षि अरुणाचल की गुफा में बैठे ही हैं, कभी निकले ही नहीं। गांधीविचार के लोग जाते, 'आपको सेवा करनी चाहिए!' रमण एक ही बात करते कि सबका काम बंटा हुआ है। मैं इस कोने में बैठे-बैठे कर रहा हूं यह जगत की सेवा ही है! ठाकुर बैठे ही रहते। ठाकुर क्या है? रूखड़ है। मेरी लिस्ट में है ये सभी रूखड़! मेरी दृष्टि से ठाकुर रूखड़ है।

तो रूखड़ की परिभाषा 'मानस'कार ने की है उसमें वो अनासक्त होता है। साथ ही साथ उसकी आंतरिक उज्वलता को कोई भी नहीं छू सकता इतनी धवलता होती है। शुभ्रता, पवित्रता और वो गुनमयी भी होता है। और गुण से मुक्त होता है। चौथा लक्षण रूखड़त्व का 'मानस' के आधार पर -

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

बाप! अपने जैसे सामान्य आदमी को समझ आए ऐसी सरल बात तुलसी कहते हैं, रूखड़त्व पाये हुए महापुरुष कौन है? ये वो है जो स्वयं दुःख सहता है, यह चौथा लक्षण है। दूसरे के लिए अधिक सहता है। साधु कौन है? साधुचरित व्यक्ति

कौन है? जो खूब दु:ख सहन करता है। एक वस्तु समझ लीजिए, जो लोग ऐसा कहते हैं न कि साधु-संतों को लहर है, उन्हें 'साधु' शब्द ही बोलना आता है! साधु की उसको खबर ही नहीं है! हां, उसे दु:ख की असर नहीं होती। बाकी मुश्किलियां तो उसको भी पड़ती हैं। उसे छूती नहीं, वो उसकी अवस्था है। अगला लक्षण है 'परछिद्र दुरावा'; दूसरे को ढंकता है, दूसरे के छिद्रों को छिपाता है। साधु वो है जो दूसरे के छिद्रों को ढंके और हरि को हमारे समक्ष खुला कर दे कि ले ये ईश्वर, ये परमात्मा! जो दु:ख सहन करता है, दूसरे के दोष को ढंकता है। ऐसे करते-करते उसे दोष मुक्त कर देगा। उस दोषों से मुक्त करना है साधक को। उसे वंदनीय नहीं होना है, पर चंद्र-सूर्य उसके पग लागते हैं। वो वंदनीय हो जाता है। उसे जगत में यश, कीर्ति नहीं चाहिए, पर पूरा जगत उसे यश और कीर्ति देता रहता है।

जिस व्यक्ति में आपको ऐसा लगे कि ये आदमी बहुत ही संयमी होना चाहिए; ब्रह्मचारियों को भी ऐसा लगे कि इस आदमी को पग लागना चाहिए, जिस आदमी को देखकर गृहस्थ को ऐसा लगे कि ये आदमी तो हमारा आदर्श बन सकता है ऐसा है, जिसे देखकर वानप्रस्थियों को ऐसा हो कि हमारी तपस्या और इन्द्रियों के प्रत्याहार करने की जो हमारी साधना है, वो इस आदमी से तो बहुत पीछे है और जिस आदमी को देखते ही ऐसा लगे कि कपड़ा तो चाहे जो पहना है पर ये तो परम संन्यास को प्राप्त कर गया है, उस तत्त्व का नाम रूखड़ है। जिसमें ये चारों बातें हो। इसमें मेरा भरत आता है। भरद्वाजजी के आश्रम में जब भरतजी आये तब चारों के चार जो बटुक ब्रह्मचारी थे उन्हें ऐसा लगा कि भरत जैसा कोई ब्रह्मचारी हो नहीं सकता! गृहस्थ जो सभी इलाहाबाद प्रयाग के आये उन्हें भरत में पूरेपूरा गृहस्थाश्रम दिखा। वानप्रस्थियों को वैराग्य और संन्यासियों को उदासीनता दिखी। चारों चार वस्तु दिखी।

रूखड़त्व समाज के लिए 'रामायण' में ये दो संत, एक गृहस्थ और दूसरा विरक्त। भरत गृहस्थ है और विरक्त संत हनुमान है। कपास के फूल की तरह जिसका चरित्र है ऐसा ये हनुमान भी विरक्त है। वैसे तो हनुमान में भी चारों आश्रम दिखते हैं। हनुमानजी ने लग्न नहीं किया तो ब्रह्मचारी तो है ही। हनुमानजी गृहस्थ भी है। आपको होगा कि लग्न नहीं किया तो गृहस्थी कैसे? जिसको सुन्दर बढ़िया हिसाब-किताब करना आता हो वो गृहस्थ कहायेगा। पक्का गिनतीबाज, फिर चाहे जिस आश्रम में हो गृहस्थ ही है। हनुमानजी में गिनती तो आप देखो! बड़े से बड़ा वैश्य वो गिनायेगा जो हमें कर्जे से बाहर ही न निकलने दे। जगत में एक ही ऐसा जन्मा, जिसने राम को ऋणी रखा। राम पर चक्रवृद्धि ब्याज बढ़ता ही गया। हनुमानजी वानप्रस्थ तो है ही। शाखामृग है, एक डाली से दूसरी डाली! वनचर जात है इसलिए वानप्रस्थ है। और संन्यासियों के संन्यासी है, शंकर के अवतार है। तो हनुमानजी में चारोंचार दिखते हैं पर तत्त्वत: मूलत: हनुमानजी हमें विरक्त दिखते हैं। गृहस्थ होगा उसको पांच विघ्न आयेंगे। विरक्त होगा उसको चार विघ्न आयेंगे। कुल नौ विघ्न है, आध्यात्मिक यात्रा में। चाहे त्रिकूट पहुंचना हो या चित्रकूट पहुंचना हो। हनुमानजी महाराज जानकी की खोज करने आते हैं तब चार विघ्न आये हैं।

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को जनकपुर ले गये। अहिल्या का उद्धार किया। जनकपुर गए। पुष्पवाटिका में जानकीजी को मिले। दूसरे दिन स्वयंवर रचा गया। धनुष भंग हुआ। सीताजी ने जयमाला पहनायी। परशुराम आये। प्रभाव देखकर निकल गए। फिर पत्र लेकर दूत अयोध्या गये। दशरथजी बारात लेकर जनकपुर पहुंचे। लग्न हुआ। चारों भाई पुत्रवधूसहित अयोध्या आये। फिर राज्याभिषेक का निर्णय। वनवास हुआ। चित्रकूटवास, बाद में पंचवटीवास। लक्ष्मणजी के पांच प्रश्नों के जवाब दिए। शूर्पणखा दंडित हुई। खर-दूषण त्रिशिरा का नाश। यहां रावण मारीच को लेकर आया। रावण ने माया-सीता का अपहरण किया। फिर भगवान जटायु का उद्धार करके, कबंध का उद्धार करके शबरी के आश्रम में आये। शबरी ने योगाग्नि में देह विलीन किया। भगवान पंपासरोवर आये। नारदजी मिले। भगवान की सुग्रीव के साथ मैत्री। बालिवध, सुग्रीव का राज्याभिषेक। भगवान चातुर्मास करते हैं। सुग्रीव भगवान का काम भूल गया। भगवान ने बनावटी रोष किया। सुग्रीव को सावधान किया। जानकी की खोज हनुमानजीवाली टुकड़ी ने आरंभ की। स्वयंप्रभा से मिले। समुद्रकिनारे आये। संपाति के सहयोग से जानकी के विषय में खबर प्राप्त की। अब मुझको हनुमानयात्रा के चार विघ्न कहना है इसलिए संक्षेप में कथा कही। वक्ता को अधिकार है। वक्ता चाहे तब समास भी कर सकता है, व्यास भी कर सकता है।

हनुमान में जो सर्वोच्च रूखड़पना दिखता है उसमें चार विघ्न आते हैं। भरत के विघ्न वो गृहस्थी की यात्रा के विघ्न है। हनुमानजी को आनेवाले विघ्न ये विरक्त को आनेवाले विघ्न है। और वैराग्यवान व्यक्ति को पहला विघ्न समृद्धि का होता है। विरक्ति में पहले जल्दी कोई वस्तु मिलती हो तो वो सोना है। हनुमान की काया ही स्वर्ण की है, उसे कोई दूसरा सोना प्रलोभन नहीं दे सकता। पौराणिक कथा के अनुसार मैनाक पर्वत सोना का था जो हनुमानजी

के सामने आया। विरक्त आदमी, साधकों के लिए पहला विघ्न है सोने का पहाड़, अधिक समृद्धि। जागृत पुरुष बचते हैं। हनुमानजी की भक्ति की हो, हनुमानजी की कृपा प्राप्त की हो वो समझ जाता है, फंसता नहीं। पहला विघ्न यही आता है, समृद्धि अवरोधक बनती है। माया रिद्धि-सिद्धि को प्रेरित करती है और साधक के रास्ते में आकर उसके ज्ञान-दीप को बुझाने के सभी प्रयत्न करती है। और सोने में कौन न रुक जाय? हम सब सोने के पहाड़ क्या सोने की अंगूठी में रुक जाते हैं! सोने का चैन कोई दे वहां रुक जाते है! आप देखो, हनुमान ने उसका तिरस्कार भी नहीं किया। ऐसी उपेक्षावृत्ति भी साधु में नहीं होती। विरक्त तो खुद ही सोने का होता है साहब! स्वयं हेमवर्ण होता है। पूरी लंका सोने की सामने आयी थी। परंतु हनुमानजी में एक ऐसी विरक्ति है, उन्होंने स्पर्श किया, मैनाक के माथे पर हनुमानजी ने हाथ रखा और फिर कहा कि मुझे अच्छा लगा तुम मुझे विश्राम देना चाहते हो पर जब तक राम का कार्य न हो जाये तब तक मुझे विश्राम नहीं। इसलिए तुम्हारे आदर के लिए धन्यवाद पर मैं रुक नहीं सकता। सच्ची विरक्ति रूपये को धक्का नहीं मारती, छू लेती है। कहती है, इसका सदुपयोग कर डालो। ये पैसा आपने दिया है उसको ट्रस्ट में डाल दे। अच्छे काम में लगा दे। पर ये विघ्न है जरूर।

तो कपास के फूल की तरह जिसका चरित्र है ऐसे हनुमान का पहला विघ्न है सोने द्वारा आराम का प्रलोभन देकर रोकने का प्रयास। हनुमानजी इसमें से निकल गये। अब हनुमानजी जा रहे थे उसमें हनुमानजी की बुद्धि, बल की परीक्षा के लिए देवताओं ने सुरसा नामक सर्पों की माता से बिनती की कि हनुमान के मार्ग में जाओ, उनकी परीक्षा लो। वो सुरसा मुंह फैलाकर आकाशमार्ग से हनुमान को रोकने आयी। मुझे ऐसा लगता है कि इसका ऐसा अर्थ करना चाहिए, जब आदमी वैभव का त्याग करता है तब कीर्ति मुंह फाड़फाड़ कर आती है। यश, कीर्ति, जयजयकार ये साधक को निगल जाते हैं। सुरसा यानी अच्छा रस, हमें पसंद है। और कीर्ति किसको पसंद नहीं? यह केवल कहने के लिए कि हम तो निर्लेप है। जिसने जिसने त्याग के मार्ग की यात्रा की है, उसे फिर कीर्ति ने रोकने की कोशिश की है। कुछ भी करके हमारे साधन के मार्ग को रोकने आती है। हमारी अध्यात्मसाधना को सुरीतत्त्व भी विघ्न पहुंचाते हैं। धरती के तत्त्व तो बहुत कम विघ्न डालते हैं। सुरसा की बात सुनते ही हनुमानजी कहते हैं, मैं किसी का भोजन बनूं और किसी की तृप्ति का कारण बनूं तो भोजन होने में मुझे कोई अड़चन नहीं है पर माँ, एक बिनती है कि मैं रामकार्य करके आऊंगा। जानकी का समाचार ले आऊं, वो संदेशा राम को दे आऊं और फिर मैं स्वयं आकर आपके मुख में प्रवेश करूंगा। पर सुरसा ने कहा, बंदर का क्या भरोसा? वापस आये न आये! इसलिए अभी ही तुमको खाना है। नहीं मानी तब हनुमानजी ने कहा तो लो, मुझे खा लो। एक योजन मुख फैलाया सुरसा ने, यानी चार कोस जितना मुंह चौड़ा हुआ। श्रीहनुमानजी डबल हुए, आठ कोस हुए! कीर्ति से बचने के लिए हम अधिक से अधिक बड़े बनते हैं और कीर्ति अधिक मुंह फैलाती है। इससे बचने के लिए तो छोटा-सा रूप लेकर उसके मुख में चक्कर लगाकर बाहर निकल आये। पर हमें लगता है कि हम भी दिखा दे। जब सुरसा ने सौ योजन मुंह फैलाया तो हनुमानजी ने एकदम छोटा रूप ले लिया। सो योजन के मुख में हनुमान सुपारी जितने होकर मुंह में जाकर वापस आ गये! जीवन को ऐसा छोटा बनाओ कि कीर्ति आपको ढूंढती फिरे; यश और प्रतिष्ठा आपको खोजें।

हनुमानजी की यात्रा आगे बढ़ी। अब तीसरा विघ्न आया। एक राक्षसी सिंधु में रहती है। सिंहिका उसका नाम है। पुराण के मतानुसार वो राहु की माता है। माँ के संस्कार पुत्र में है। राहु आकाश में सूर्य-चंद्र को ग्रहण करता है। ये सिंहिका आकाश में पक्षी उड़ते हैं तब उसकी परछांई पकड़कर पक्षियों को पछाड़ती है। कोई तांत्रिक प्रयोग करती होगी। तंत्र बहुत उत्तम भी है। पर उसका दुरुपयोग भी बहुत हुआ है, क्योंकि तंत्रवालें अधिकतर छाया ही पकड़ते हैं। मौलिक वस्तु नहीं पकड़ते। और इस कलियुग में

जिस व्यक्ति में आपको ऐसा लगे कि ये आदमी बहुत ही संयमी होना चाहिए; ब्रह्मचारियों को भी ऐसा हो कि इस आदमी को पैर लागना चाहिए; जिस आदमी को देखकर गृहस्थ को ऐसा हो, ये आदमी तो हमारा आदर्श बन सकता है, जिसे देखकर वानप्रस्थियों को ऐसा लगे कि हमारी तपस्या और इन्द्रियों का प्रत्याहार करने की जो हमारी साधना है, वो इस आदमी की अपेक्षा तो बहुत पीछे है और जिस आदमी को देखने से ऐसा लगे कि कपड़ा चाहे जो पहना दे पर ये तो परम संन्यास को प्राप्त कर चुका है। उस तत्त्व का नाम रूखड़ है।

कोई ऐसा महागुरु मिले तो ही तंत्रविद्या में जाना। बाकी बैरखा में रामराम भजना, नहीं तो आप बीमार पड़ोगे, या तो चीखोगे, या तो आखिर रोग घेर लेगा! या तो जगत टीका करेगा कि इतनी-इतनी साधना किया और फिर ये हाल! मैंने ऐसे तंत्रप्रयोग करते हुए देखा है।

बाप! पहला विघ्न है वैभव। दूसरा विघ्न वैभव को त्याग से मिलनेवाली कीर्ति और तीसरा विघ्न है अपनी उड़ान, अपनी तरक्की और परछाई पकड़ने की लोगों की वृत्ति। परंतु जिसका लक्ष्य किसीको मारने या किसीको लूंटने या किसीके साथ संघर्ष करके समय बिगाड़ने का नहीं है, जिसका लक्ष्य तो त्रिकूट में रही जानकी को प्राप्त करना है वो किसी में नहीं पड़ता। ईर्ष्या तत्त्व का नाश करके आगे बढ़ता है। मुझको अपने श्रोताओं को इतना ही कहना है कि कथा को सफल होने में थोड़ी भी देर नहीं लगती। भगवान कहते हैं, मेरे शरण आयेगा उसे एक क्षण में साधु बना दूं। इतनी बड़ी शक्ति जिस 'मानस' में है उसके नजदीक मैं गाया करता हूं। आप सुना करते हैं, फिर भी हम सबमें ये साधुता क्यों नहीं आती, उसका एक कारण है हमारे भूगर्भ में कहीं ईर्ष्या तत्त्व काम कर रही है! वह मुझसे उपर कैसे निकल गया! और साहब, पैसे की बाबत में कोई आगे निकल जाय उसकी कोई ईर्ष्या करे तो समझे, पर धर्मजगत में जब ईर्ष्या करते हैं वो तो अति सूक्ष्म है! हनुमानजी ने ईर्ष्या और द्वेष का नाश किया है। हनुमानजी तीन विघ्न पार करके लंका की भूमि पर पैर रखते हैं। तब चौथा विघ्न आता है। जिसमें वे लंका में प्रवेश करने जाते हैं तभी लंकिनी नाम की एक राक्षसी हनुमानजी को प्रवेश करने से रोकती है। वर्ना हनुमानजी बिलकुल छोटा रूप लेकर जाते हैं। मच्छर नहीं बने। मच्छर जितना बन गये हैं। हनुमान मच्छर बनके नहीं पर निर्मत्सर बनकर गये हैं। मत्सर यानी द्वेष, दाह, ईर्ष्या। विनोबाजी ऐसा कहते हैं कि किसी के जीवन में आपको प्रवेश करना है कि इसमें सत्त्व-तत्त्व कहां बैठा है, तो आपको वो व्यक्ति हो उसकी अपेक्षा छोटा बनना चाहिए। जो व्यक्ति लघु बनेगा, आदमी अपनी अल्पता को कबूल करेगा, वो भक्ति कहां बैठी है उसे खोज सकता है।

तो लंकिनी राक्षसी, वाल्मीकिजी के मतानुसार लंकानगरी खुद स्त्री का रूप लेकर भौतिक लंकानगरी की चौकीदारी करती थी कि रात्रि में कोई चोर लंका में प्रवेश न करे। लंकिनी नाम की राक्षसी लंका के गेट पर चौकी करती है। इसमें हनुमानजी मच्छर जितना होकर प्रवेश करते हैं। इतने छोटे बनकर हनुमानजी गये तो भी लंकिनी ने पकड़ लिया! कहा कि कहां जाता है तू? तू मुझको धोखा नहीं दे सकता। मेरी खुराक ही लंका का चोर है। और हनुमानजी को क्रोध आ गया! एक मुष्टिका प्रहार किया! हनुमानजी ने मुष्टिका इसलिए मारा कि जो तू चोर ही खाती है तो इस दुनिया का बड़े से बड़ा चोर लंका में है, जो मेरी माँ को चुराकर ले गया है। खाने की शुरूआत वहां से कर! तू भेदबुद्धि है। ये आखिरी विघ्न है भेदबुद्धि। भेदबुद्धि का नाश किया और रक्त निकल गया। संत का हाथ लगे तब रक्त निकल जाता है और विरक्त हो जाता है। स्वयं विरक्त है हनुमानजी। लंकिनी लुढ़क गई। भेदबुद्धि दूर हुई इसलिए बंदर में संतदर्शन होने लगे! संत का प्रासादिक प्रहार हो तो भेदबुद्धि नष्ट होती है। लंकिनी सावधानीपूर्वक खड़ी हुई। हाथ जोड़ी, 'महाराज, आपने मुझे दीक्षा दी है। मेरी भेदबुद्धि नष्ट हुई है। मैं तो रावण की ड्यूटी निभा रही थी। पर आज मुझे विश्वास हो गया कि आप चोर नहीं हो, आप तो संत हो।' फिर हनुमानजी छोटा-सा रूप लेकर आगे गये। लंका प्रवेश किए।

मेरा संदर्भ ये था, एक विरक्त संत और एक गृहस्थ साधु; हनुमान और भरत ये कपास के फूल जैसे हैं, वे रूखड़ हैं। वे रूखड़त्व प्राप्त किए हुए महापुरुष हैं। जीवन की यात्रा में कैसे विघ्न आते हैं यह 'रामायण' ने प्रसंगों द्वारा प्रस्थापित किया है इसलिए मैंने विस्तार किया।

पुकारो गमे ते स्वरे हुं मळीश ज.
समयना कोई पण थरे हुं मळीश ज.

- राजेन्द्र शुक्ल

ये गिरनार, ये अद्‌भुत दिव्यभूमि! राजेन्द्रभाई जूनागढ़ी कवि है। और अपने मनोजभाई, क्या खूब है उसकी मुलायमियत! कैसी नाजुकता थी साहब! जबरदस्त कवि। कहीं उसने जो संशोधन रखे हैं, अद्‌भुत हैं! भीखुदानभाई और हम शिवरात्रि के मेले में मिलते और बैठे होते, फिर मनोजभाई कहते कि बापू, जिसस क्राइस्ट की बात है जिसमें एक स्त्री ने भूल की और सभी उसे पत्थर मारते हैं। जिसने कभी पाप न किया हो उसको पत्थर मारे। मनोजभाई कहते, मुझको इसमें संशोधन की जरूरत लगती है। मुझे ऐसा लगता है कि कभी हमने पाप नहीं किया है ये सिद्ध करने के लिए किसी को पत्थर मारना? सिद्ध न हो तो जाने दो परंतु किसी पर घाव नहीं करना चाहिए। ऐसा कहकर वे जिसस के प्रसंग को ये नया रूप देते हैं -

क्यारेय पाप जेवुं कशुं पण कर्युं नथी,
एथी ज थोड़ो आपणे पथ्थर उपाडियें?

- मनोज खंडेरिया

रूखड़ अर्थात् फूल से प्रगट हुई सार्वभौम सुगंध

हमनें नौ दिन 'मानस' के आधार पर संतों से सुना हो, गुरु की अहेतु अलौकिक कृपा के आधार पर शास्त्रदर्शन किया हो अथवा तो कुछ पढ़ा हो, अनुभव किया हो उसके आधार पर नौ दिन सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के सूर में हो रही है, उसके विराम का समय है ऐसे समय में थोड़ा विचार करके आगे बढ़ें कि ये रूखड़ तत्त्व क्या है? मेरी दृष्टि से कहूं तब उसमें 'मैं' नहीं हैं प्लीझ! सही अर्थ करिएगा पर जवाबदारी मुझे लेनी है इसलिए मैं मेरी दृष्टि से कहता हूं कि आप सब को भार न लगे, आप किसी से कह सकोगे कि ऐसा उन्होंने कहा था। इसलिए ही 'मैं' शब्द का प्रयोग हैं। बाकी मुझे खबर है, यहां किसी का 'मैं'पना नहीं हैं। यहां तो महादेव ही हैं साहब! इसके सिवाय कोई नहीं है। और मेरे तथा आपके दु:ख का कारण क्या है बाप! गलत आदमी पर किया भरोसा और सही आदमी पर की गई शंका ही हमारे दु:ख का कारण है। कर्म तो बदल सकते हैं। याद रखना प्यारों, ईश्वर प्रारब्ध बदल सकता है, हमारा स्वभाव नहीं बदल सकता। और स्वभाव केवल और केवल जिस दिन बदलेगा उस दिन रूखड़ के संग में ही बदलेगा, संत के संग में ही बदलेगा। साधु संग या कोई बुद्धपुरुष हमारा स्वभाव बदल सकता है। देर तो लगेगी क्योंकि स्वभाव को हम सब जिन्स में ले कर आते हैं। ऐसे समय में सत्संग बहुत ही आवश्यक है।

गलत आदमी पर किया भरोसा दु:ख देता है और सही आदमी पर की गई शंका बहुत दु:ख देती है। इसका कोई उपाय नहीं है। इसलिए या तो कोई निर्णय न करो, अपने किसी श्रद्धेय पर छोड दीजिए; हे बुद्धपुरुष, अन्य कहां जायें बाप! हम ओर कहां जायें? हमें कौन उधार देगा? हमें कौन रखेगा? ऐसा कौन-सा स्थावर हमारे पास है कि हम उस पर लोन ले? नहीं है कुछ स्थावर, नहीं है कुछ जंगम! आखिरी दिन भी कहता हूं कि जिस एक बहुत ही अपमानित शब्द में रूखड़ का सतत प्रयोग हुआ है उस अर्थ में यहां चर्चा है ही नहीं। अब उस अर्थ में 'रूखड़' का प्रयोग प्लीझ न कीजिएगा। विनोद में आप कहे वो बात अलग है कि ये तो रूखड़िया है! मैत्री में कहे वो बात अलग है। बाकी रूखड़ अर्थात् स्थूल रूप में तो वेलाबाबा। जाति का कोली। वो पूरा खिल गया था, उसका नाम रूखड़ है। पूरा खिल जाना पर अभी इस ऋतु में पलाश के वृक्ष के एक भी पत्ते नहीं रहते और पूरा टेसू चारों ओर से जो खिलता है वैसा परिपूर्ण खिला हुआ वो रूप, खिला हुआ वो स्वरूप उसे मेरी व्यासपीठ रूखड़ कहती है। इसलिए इस वस्तु को ध्यान में रखिएगा।

मैंने कल आप से कहा था कि मेरी दृष्टि में ग्यारह रूखड़ हैं। मुझको गिनाना नहीं है क्योंकि बहुत हो सकते हैं रूखड़। बहुत नाम आ सकते हैं। परंतु आदि रूखड़ से लेकर आज तक जो-जो रूखड़ हुए हैं, यानी कि बुद्धपुरुष हुए हैं, बुद्धपुरुष का देशज नाम रूखड़ है। देशज संज्ञा है, लोकशब्द है रूखड़; बाकी परिपूर्ण खिली हुई शुद्ध शक्ति का नाम यहां रूखड़ है। इतना हमारे संस्मरण में रहे इतना मैं अवश्य चाहूंगा। बहुतों को शायद ऐसा लगे कि राम को बापू ने क्यों रूखड़

कह दिया? भगवान महादेव की क्यों बात कर रहे हैं? ऐसा भी लगेगा! आई नो; मुझे समझ है। किसी को चोट भी लगेगी, ठेस भी लगेगी! पर उनकी बात वो जाने! मेरा तो कोई इरादा ऐसा है ही नहीं। परंतु उस परमतत्त्व को इस तरह से देखता हूं, इस दृष्टि से निहारता हूं। फूल है न वो रूप है, स्थूल हैं पर उसमें से निकली खुश्बू वो रूखड़ है। कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं, चैतन्य का ऐसा नियम है कि जहां से अलग होता है उसके उपर ही वापस टूटता है। हम सब जानते हैं संतों ने कहा है वही मैं आप से कहता हूं कि दीया ये सूरज का ही अंश है। दीया सूरज में से ही प्रगटित प्रकाश तत्त्व है। और इसी से मोमबत्ती प्रगटित करके चाहे जैसे भी उल्टी करो, ज्योत तो उपर ही जायेगी क्योंकि उसे मालूम है कि मेरा उद्गम स्थान उपर है। मैं वहां से आया हूं। अंश का अंशी की ओर गति करना ये उसका प्राकृतिक लक्षण है। पानी का स्वभाव है एकदम नीचे जाना। वो नीचे ही आयेगा। लोटे के पानी को ऐसे उछाल दीजिए, वो कुछ भी करके जमीन पर ही आयेगा क्योंकि उसके मूल की तरफ गति करना प्राकृतिक स्वभाव है। सूक्ष्म में से निकली विराट वस्तु चमचमाती होगी तब एक ही जगह नहीं रहती; वो सभी दिशाओं को खुश्बू से भर देती है। यानी रूखड़ अर्थात् फूल से प्रगट हुई सार्वभौम सुगंध; उसका नाम रूखड़। एक माटी के दीये में प्रगटित किया गया दीप और उसका प्रकाश सभी को प्रकाशित कर देता है, उस प्रकाशित तत्त्व का नाम रूखड़ है।

अभी भी एक खूब सरल रूखड़ का अर्थ करता जाऊं अन्त में। 'रू' का अर्थ होता है उजाला। आप सभी जानते हैं, 'गु' यानी अंधकार और 'रू' यानी प्रकाश, 'गुरु' ये शास्त्रीय अर्थ हुआ। तो 'रू' यानी उजाला और 'ख' यानी आकाश, गगन। जो उजाला आकाश की ओर कदम बढ़ाये उसका नाम रूखड़। उजाला आकाश में फैलने लगे। जिसका प्रकाश केवल उसके देहरूपी दीये तक सीमित न रहकर वो पूरे आकाश में धीरे-धीरे कदम भरता होगा उसका नाम रूखड़। ये रूखड़ की बिल्कुल शाब्दिक परिभाषा है। तो बाप! ये रूखड़ तत्त्व, ये गन्धतत्त्व, ये अग्नितत्त्व, ये पृथ्वीतत्त्व, ये जलतत्त्व और ये नभतत्त्व इसी तरह जगमगाते हैं। इसीलिए इस लोकगीत में, ये सब रूपक आये हैं। धरतीतत्त्व भी लिया। कुआं के उपर मोट, जलतत्त्व लिया। धरती के उपर मेघ ये आकाशतत्त्व भी लिया। शब्दतत्त्व भी लिया, मुरली के उपर नाग। इस तरह से हर एक तत्त्व का यहां स्पर्श हुआ है। ऐसा एक सार्वभौम चैतन्यतत्त्व का, लोकबोली का शब्दरूप रूखड़ है।

बुद्धचेतना को लोकबोली में मेरी व्यासपीठ रूखड़ कहती है। इसलिए यहां जो कुछ चैतन्य की बात हुई है वो कोई तिरस्कृत बोली में रूखड़ नहीं है। वर्ना मैं शंकर को कह सकता हूं रूखड़? मेरे लिए शंकर क्या है, ये तो आप भी जानते होंगे। मेरे लिए शिवत्व क्या है? शंकर जिसे प्रिय न हो, उसकी भक्ति ही सफल नहीं होती साहब! लाख माला घूंटता रहे! 'रामायण' में लिखा है इस लिए कहता हूं। ये सब जो ललकार करके कह रहा हूं उसका बल है ये ('रामायण'); 'रामचरित मानस' में स्पष्ट लिखा है, शंकर का जिसने भजन नहीं किया होगा वो मेरी किसी दिन भक्ति प्राप्त नहीं करता। भक्ति का ढोंग कर सकता है! भक्ति का दंभ कर सकता है! ये शिवतत्त्व सार्वभौम है। इससे उस पूर्ण तत्त्व को मैं यहां रूखड़ कहता हूं। हम सब की मृत्यु है। रूखड़ की मृत्यु नहीं होती।

यहां से कहा जाये इसलिए प्लीज, सिद्धांत न समझना, शास्त्र न समझना। जिसने-जिसने शायद थोड़ी-थोड़ी कहने की कोशिश की है वो ऐसी जगह पहुंचे हैं महापुरुष। हम सब तो सुनकर धन्य हो। बाकी जो बोला है वो शास्त्र नहीं बोला, सिद्धांत नहीं बोला; अपनी पकी हुई स्वानुभूति कही है। भगवान शिव और भगवान भुशुंडि वो दोनों क्या गाते हैं 'मानस' में? केवल सिद्धांत नहीं कहते, केवल शास्त्र नहीं कहते साहब! फिर भी वे कृपा करके बोले हैं। मेरा समझना ऐसा है, जहां तक आदमी को अनुभव होता है, वहां तक वो बोलता भी है। अनुभूति होने के बाद बोला भी नहीं जा सकता। ये अनुभव का कथन हो सके थोड़े शब्दों में लोकमंगल के लिए कुछ बोलना चाहिए। शंकर बोले हैं। थोड़ी कैलास से एकाद सीढ़ी नीचे उतर कर बोले हैं। पार्वती ने कहा, कुछ बोलो। ये बोलने के लिए उन्हें कुछ बहिर्मुख होना पड़ता है। बाकी पूर्ण अनुभूति है वो बोली ही नहीं जा सकती।

लोकमंगल के लिए सद्गुरु बोलते हैं वो शास्त्र नहीं है, वो शास्त्र का सार होता है। वो सिद्धांत नहीं होता, वो साधु का अपना स्वभाव होता है। परंतु अनुभूति तो बोल ही नहीं सकती। बात करनी अच्छी न लगे पर गुरु के घर की तो बात कही जा सकती है। आप सब मेरे हैं इसलिए कहता हूं, मैंने अपने दादा त्रिभुवनदादा को तलगाजरडा में बातें करते नहीं देखा है! मेरा भाग्य कि उन्होंने मुझे इतना कहा। इस साधु को मैंने किसी दिन पटेल के साथ या गांव के किसानों के साथ बात करते नहीं देखा! नेवर। बस पलाथी मार कर बैठते थे। दाहिने हाथ में बैरखा उनका

सतत घूमता रहता था! मेरे लिए ये मोक्ष है। मेरे लिए ये परम तीर्थ है। मैं उनकी गोद में बड़ा हुआ, उनके पास बैठा। बोलना ही नहीं। मेरे दादा को 'रामायण' की चौपाईयां याद हैं। परंतु तलगाजरडा के मंदिर में रामजन्म दोपहर को होता और हम सब बोलते 'भये प्रगट कृपाला...' पर दादा नहीं बोलते थे क्योंकि उनसे बोला ही नहीं जाता! वे बोल ही नहीं सकते थे! अनुभूति नहीं बोली जा सकती।

तो भजन बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है। बोलना पड़ता है भजनानंदियों को क्योंकि अनुभूति होगी वहां तक बोला नहीं जाता है। मतलब बहुत-सी वस्तु शास्त्र नहीं, सिद्धांत भी नहीं है। केवल महापुरुषों की स्वानुभूति है। इसको शास्त्रों में खोजने जायेंगे तो थक जायेंगे, मिलेगा नहीं। हां, उनके बोल के पीछे खोजने जायेंगे तो शास्त्र मिल जायेगा। ग्यारह रूखड़ है जो मेरे, उसमें आदि रूखड़ तो महादेव है। इस तरह से सोचता हूं तो कोई ऐसा न विचारे कि शंकर को क्यों रूखड़ कहा? वो मेरा रूखड़ है। बहुतों को गौरवर्ण शिवलिंग पसंद होती है। बहुतों को श्याम वर्ण। मुझको ये सोमनाथ की शिवलिंग श्याम है, वो ही मुझे पसंद है। वो जितना खुला होता है उतना ही अधिक भाता है। जिसको अपनी खिड़की से जितना आकाश चाहिए उतना ही दिखता है।

राशिद किसे सुनाउं गली में तेरी गज़ल,
उनके मकां का कोई दरीचा खुला न था।

मेरी तो इच्छा है कि गली में जा-जा कर सब को गजल सुनाऊं, भजन सुनाऊं परंतु सब ने दरवाजे बंद रखे थे! यहां जो आठ दिन और आज नौवें दिन, रूखड़तत्त्व की चर्चा हुई वो कुछ अलग ही है। कृष्णमूर्ति कहते हैं, फूल में से निकली खुश्बू पहले तो फूल के उपर ही बिखरती है। सूरज में से निकली ज्योत को चाहे कितना भी उल्टा करो तो भी उपर ही जाती है क्योंकि वो पहले तो सूरज को ही पकड़ती है। इसीलिए कृष्णमूर्ति यहां रूखड़त्व की चर्चा में मुझको मदद करते हैं। तो सुगंध इस तरह प्रसरित होती है। शब्द इस तरह प्रसरित होता है। रूप जब तक देह में ही होगा तब तक शृंगार है, तब तक अमुक प्रकार की अशुद्धियों को निमंत्रित करता है; मोहित करता है इस अर्थ में परंतु उसके अंदर का स्वरूप जब विस्तृत होता है तब वो जगमगाता है; तब वो केवल एक बोडी में नहीं रहता। वो सभी के आत्मचैतन्य को स्पर्श करता है। यहां रूखड़तत्त्व की चर्चा कुछ इसी प्रकार की है। इसी दृष्टि से देखना। बाकी नासमझी करेंगे तो वो आपकी जवाबदारी है। मैं तो ये एक बजे चला जाऊंगा! मुझको बहुत से लोग कहते हैं कि कथा पूरी होने के बाद आप निकल क्यों जाते हैं? मुझे गुरु का आदेश है कि बेटा, कथा पूरी हो और हनुमानजी को विदाई के बाद व्यवस्था खातिर और जाने की तैयारी के लिये जितना विलंब हो वो, बाकी उस गांव को छोड़ देना। इसलिए मैं निकल जाता हूं। दुनिया में मैं कहीं नहीं रुकता। यहां मेरा हनुमान गया और ये मैं। ये गुरु की आज्ञा है। और मुझे पसंद भी।

तो बाप! 'मानस-रूखड़' की थोड़ी चर्चा आपके समक्ष गुरुकृपा से और संतों के आशीर्वाद से और आपके सद्भाव से मैं करता जा रहा था, उसमें थोड़ा आगे बढ़ें। रूखड़ बहुतों के नाम होते हैं। मेरे गांव में ही भरवाड का लडका, उसका नाम रूखड़ है। मुझे कल किसी ने चिठ्ठी बहुत अच्छी लिखी थी, 'बापू, रूखड़भाई बोले ये अच्छा नहीं लगता; रूखड़सिंह बोले ये भी ठीक नहीं लगता, रूखड़ शेठ कहे ये भी अच्छा नहीं लगता। रूखड़ बोलते हैं, ये ही प्रिय लगता है।'

रूखड़ बावा तुं हळवे हळवे हाल्य जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो,
जेम झळुंबे नरने माथे नार जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

'हळवो हळवो हाल' इसके दो अर्थ है यहां। हळवो हळवो हाल यानी धीमे-धीमे चलो, बराबर। हळवो हळवो अर्थात् तेरी साधना पक गई हो न तो भी भाररूप हो कर मत चल! कपास की रूई जैसा हो कर उड़ना। भारी मत होना। नहीं तो अपनी पींडी को तूं भी नहीं उठा सकता। पवन के जैसा रहना। सरल-तरल हल्का-हल्का रहना रूखड़। तेरे गुरु की कृपा से चेतनासभर हो तो भी ऐसे हल्का रहना। अब थोड़ी पंक्ति रह गई वो। जैसे 'झळुंबे नर ने माथे नार।' इस 'रामायण' में मैं नर खोजूं तो मुझे इतने सारे मिलेंगे और फिर किस नर पर कौन-सी नार मुग्ध हुई! ऐसा ये बुद्धपुरुष कहता हो तब पूरा शास्त्र खोलना पड़ेगा! अब वो समय नहीं है अभी, इसलिए नहीं कहा जायेगा। एक तो नर अर्थात् पुरुष एकदम संसार के लेवल पर। नारी अर्थात् स्त्री संसार के लेवल पर। यहां लिखा है नर के उपर नार झळुंबे वैसे रूखड़ झळुंबे। अब सांसारिक दृष्टि से सब के अनभव होते हैं कि नर के उपर नार मुग्ध होती ही है। जब देखो तब मुग्ध हुई खड़ी होती है। 'रामायण' में दो शब्द लिखे हैं इसलिए कहता हूं-

नारि बिबस नर सकल गोसाईं।

नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।

दो-तीन शब्द ही कहूंगा नर को केन्द्र में रखकर 'मानस' में प्रयुक्त 'नरवर' अर्थात् नर में श्रेष्ठ। यह भी समाज के स्तर पर ही कहूंगा। पूरे समाज में वो व्यक्ति नहीं है पर समाज का एक ऐसा उठा हुआ व्यक्तित्व है जिसे हम नरश्रेष्ठ कहेंगे, नरवर कहेंगे। किसे नरश्रेष्ठ कहा जायेगा? जिसके द्वार पर आया हुआ नर किसी दिन 'ना' शब्द नहीं सुनता उसे नरश्रेष्ठ कहा जायेगा। बापा, मुझे रोटी चाहिए तो रोटी देगा। आधे में से आधा देगा। कोई कहे कि मेरी लड़की की शादी रुक गई है। हल्दी लग गई है और एक जन ने भरोसा दिया था वो बदल गया है! और उस वक्त जिसके दरवाजे से 'ना' न मिले वो नरवर है। संघर्ष आये तब डरके कदम पीछे न खींचे उसका नाम नरवर है। ऐसे बहुत कम होते हैं। कैसी-कैसी है इस देश की सभ्यता! जिसके दरवाजे पर मांगनेवाला 'ना' शब्द नहीं सुनता।

अपने यहां क्यां कहेंगे? वो भाई धर्मधुरंधर हैं। शास्त्रों में वृषभ को धर्म कहा है। धर्म जो शंकर के सामने बैठा है; धर्म अभिमुख शंकर हैं। अथवा तो धर्म शिवअभिमुख है। ये नंदी वृषभ अर्थात् वृषभध्वज कहलाता है उसकी ध्वजा का सिम्बोल वृषभ है। और बैल के कंधे पर जुआ होता है वैसा धर्म का जुआ जिसने धारण किया है उसे धर्मधुरंधर कहा जायेगा। केवल शब्द लगे ये पर्याप्त नहीं है। शब्द लगे ये भी हमारे लिए अहोभाग्य है। ऐसा रखे परंतु ये पर्याप्त नहीं है। जिसने धर्म की सेवा की है उसका कंधा घीस गया होता है साहब! धर्म मेकअप का क्षेत्र नहीं है, वेकअप का क्षेत्र है। धर्म जागृति का क्षेत्र है। कंधा छिल जाता है। तो जो नरवर है, जिसके द्वार पर 'ना' शब्द नहीं आता। जिसकी दृष्टि में किसी के उपर खराब भाव न जगा हो। इन सब को नरवर कहेंगे। नर अर्थात् बिल्कुल स्थूल। नारी अर्थात् बिल्कुल स्थूलभाव। पर यहां नर है, उस पर कौन सी नारी रीझेगी? ऐसे नरवर हो उन पर कीर्ति और प्रतिष्ठा गाई जायेगी क्योंकि उसकी कीर्ति जगमगाती है। और जो नरवर होता है उसे कीर्ति वरण करती ही है। और दूसरा शब्द है 'रामायण' में 'नररूप हरि।' वो बुद्धपुरुष, वो सद्गुरु, तुलसीदास उसे नरहरि कहते हैं। नरहरि अर्थात् अवतार। नरहरि वो ईश्वरपना, परमात्मापन, इनके उपर कौन रीझेगा? जो ब्रह्म है उसके उपर कौन रीझेगा? ज्ञानस्वरूप परमात्मा, वैराग्यस्वरूप परमात्मा, ऐसे नर के उपर नारी रीझती है। इसका अर्थ ये है कि परमात्मा के उपर कोई रीझनेवाला तत्त्व है, नररूप हरि और उस पर रीझनेवाला तत्त्व भक्ति है। भक्ति ये ज्ञान पर झुकती है। भक्ति ये वैराग्य से अधिक सुशोभित होती है। और ज्ञान-वैराग्य को वृद्ध बताया है और भक्ति को जवान दिखाया है। नर-नारी अर्थात् पुरुष और प्रकृति भी हो सकता है। पुरुष और प्रकृति अथवा तो नर यानी जीव और नारी यानी माया। हमारा जीवपना होता है तब हम सब पर मायारूपी नारी हमारे उपर ताक कर बैठी होती है।

जेम झळुंबे गोपीने माथे कान जो,

गरवाने माथे रे रूखडियो झळुंबियो।

गोपी के माथे कान चमके। सीधा-सादा अर्थ है कि गोपी कृष्ण आश्रित है। कृष्ण उसके उपर मुग्ध होता है। कृष्ण कृपा जिसके उपर है। तो गोपी अर्थात् प्रेमभक्ति। प्रेमभक्ति एक ऐसा तत्त्व है, जिसके उपर कृष्ण कृपा रीझती है। कृष्ण अनुग्रह रीझता है मुझ में और आप में। 'भागवत' में उद्धव बोलते-बोलते गये हैं कि व्रज में से मैं इन गोपियों के चरणरज को माथे पर चढाता हूं। उनके मुख से हरिगीत निकला है, उससे त्रिभुवन पवित्र हुआ है। ऐसी व्रजांगना की धूल मैं सिर पर चढ़ाता हूं। उनका जो ये प्रेमभक्ति का मार्ग है। उन पर ईश्वर कृपा रीझती रहती है। दूसरी मृत्यु स्त्री है। जीव मात्र के उपर मृत्यु झलती है। मृत्यु से हम डरते हैं क्योंकि 'महाभारत' पढ़ा नहीं है। मृत्यु जैसी कोई सुंदर स्त्री नहीं है। हरीन्द्रभाई दवे ने 'महाभारत' पर पुस्तक लिखा है। उसमें मृत्युरूपी जो सुंदरी का वर्णन किया है! हमें वरण करने का मन हो जायें। ऐसा लगता है कि गरदन झुकाऊं और मृत्युरूपी स्त्री हम को माला पहना दे। 'मौत कैसी?' हिन्दी में तो मौत स्त्री लिंग ही है। हमारी भाषा में जीवमात्र वो नर। हम सब ही जड-चेतन उसके उपर मृत्युरूपी नारी रीझ रही है।

'गो' शब्द के कितने अर्थ है! एक अर्थ होगा वाणी। दूसरा गो अर्थात् इन्द्रीय, दिशा, जल, स्वर्ग, किरण इत्यादि। इसमें गो का अर्थ होगा वाणी। कोई ऐसी वाणी सुनाई पड़ती हो और वाणीरूपी गोपी आती हो तब कान अर्थात् कृष्ण तो सही है। कभी हम संतवाणी सुन रहे हो तब हमारे कान रीझते हैं। जैसे रीझते हैं गोपी के माथे ये कान। वो कृष्ण भी और ये कर्णइन्द्रीय कान भी रीझते हैं। उसे भी वाणी सुननी है, उसे पीना है। ऐसा एक अज्ञात सर्जक का गीत, लोकगीत मेरी दृष्टि से अध्यात्म गीत; पर लोकगीत मिट नहीं जाता। सभी सन्दर्भ हैं। तो कभी मृत्यु रीझती है और प्रिय वाणी सुनने के लिए अपने कान खींचाते हैं।

'मानस-रूखड़' के विषय में हमारा संवाद था। आज कथा के विराम का दिन है, इसलिए कथा का क्रम संक्षेप में कहकर इस नौ दिन की कथा को विराम की और ले जाऊंगा। गत कल एक विरक्त साधु, एक विरक्त रूखड़, जिसका चरित्र कपास के जैसा उज्वल, रससिक्त, अर्थात् गुणमय और विरक्त, अनासक्तयोग से भरपूर ऐसे किसी साधु का चरित्र, जिसे हम रूखड़ कहते हैं, ऐसे श्री हनुमानजी की यात्रा में चार विघ्न आये, उसकी थोड़ी चर्चा हमनें की। श्री हनुमानजी महाराज लंका में प्रवेश कर चुके हैं। एक-एक मंदिर में जानकी की शोध करते हैं। हनुमानजी रावण के मंदिर में गये। मंदिर में कहीं भी भक्ति न देखी। मंदिर तो जागृत होना चाहिए। मंदिर की भक्ति जागृत होनी चाहिए। यहां तमोगुण और प्रमाद भरा है! कई बार मंदिर में नहीं दिखता, वो साधुचरित के घर में दिखता है। श्री हनुमानजी ने एक भवन देखा कि जहां तुलसी है, जहां 'राम' शब्द अंकित है। श्री हनुमानजी महाराज विचार करते हैं, यहां पैर रखते ही क्यों शांति मिलती है? लंका में तो राक्षस रहते हैं। यहां सज्जन कैसे? और 'रामचरित मानस' के दर्शन अनुसार ब्रह्मा की सृष्टि गुण-दोषमय होती है। अयोध्या में सभी अच्छे थे परंतु मंथरा भी थी! और लंका में सभी खराब थे परंतु विभीषण जैसा सज्जन भी था। जहां सब कुछ खराब हो वहां भी बीजली चमकती है। और जहां सब कुछ अच्छा होता है वहां भी घनघोर रात भी होती है! आंख चाहिए। तो लंका में भी कोई सज्जन मिल जायेगा। यहां 'राम राम' करते हुए विभीषण बाहर आये। विभीषण ने हनुमानजी को भक्ति की युक्ति बताई कि सीता-भक्ति कैसे मिलेगी?

हनुमानजी वृक्ष की घटा में छिपे हैं। रावण आया है। एक वस्तु समझना, अपने जीवन में जब समस्या आती है, उससे पहले ओलरेडी समाधान आ गया होता है। ये रावण आया उससे पहले हनुमान आ गये हैं साहब! पर उस समय हम सभान नहीं होते! कोई न कोई बुद्धपुरुष हमारे उपर झुक कर खड़ा है। उसकी कृपा छाया में हम जीते हैं। त्रिजटा नाम की राक्षसी, जिसे रामचरण में खूब प्रीति है वो आती है। त्रिजटा और जानकी का संवाद है। जानकी भस्म हो जाने की बात करती हैं। हनुमानजी ने रामनाम लिखी हुई अंगूठी फेंक दी। जानकी ने मुद्रिका उठाई। मुद्रिका को पहचान गई। ये तो मेरी अंगूठी है! कौन लाया है? कहां से आयी? और उसी समय हनुमानजी वहां प्रगट हुए। रामचंद्र की कथा कहने लगे। जानकीजी के दु:ख भागने लगे।

हनुमानजी फल खाते हैं: वृक्ष तोडते हैं। हरिनाम का आहार किया है। राक्षस रोकने के लिए आये और हनुमानजी ने फिर उनको मारा है! अक्षय का क्षय हुआ! राक्षस घबरा गये। रावण ने कहा, मेघनाद, तुम जाओ। अब उसे मारना नहीं, मुझे देखना है कि वो कहां का वानर है? इन्द्रजित आया। श्री हनुमानजी महाराज नागपाश से बंधे। मृत्युदंड का ऐलान हुआ। विभीषण का प्रवेश हुआ, 'बड़े भाई, नीतिशास्त्र ना पाड़ता है। दूत को मार नहीं सकते। आप दूसरी कोई छोटी-बड़ी सजा दे सकते हैं।' रावण ने अपने मंत्री परिषद की बैठक आयोजित की, आपातकालीन बैठक! मंत्रीमंडल की बैठक ने सर्वानुमत निर्णय किया कि वानर को पूंछ पर ममता होती है इसलिए उसे घी-तेलवाला कपड़ा लपेट कर आग लगा दें। हनुमानजी ने लंका जलाई। फिर हनुमानजी वापस आ गये। भगवान को खबर दी। भगवान प्रसन्न हुए। समुद्र के किनारे प्रभु का पडाव पड़ा है। रावण की सभा मिली। विभीषण को समझाने की कोशिश की। विभीषण को चरण प्रहार किया। संत भगवंत की शरण में आया। परमात्मा ने उसका स्वीकार किया। फिर भगवानने पूछा, ये समुद्र है इसका क्या करें? तब मत आया, आपके कुल में श्रेष्ठ है समुद्र। तीन दिन उपवास कीजिए। जवाब न दे तब बल का उपयोग करना। परंतु समुद्र समझा नहीं और समुद्र के उपर बाण ताने हैं। ज्वाला प्रगट हुई। ब्राह्मण का रूप धारण करके समुद्र भगवान की शरण में आया और बोला, प्रभु, सेतु बांधो। कोई जोड़ने की बात करता है इसलिए राम तुरंत सहमत हो जाते हैं क्योंकि उनकी विचारधारा ही जोड़ने की है, तोडने की है ही नहीं। सेतु बांधने का निर्णय हुआ। 'सुन्दरकांड' पूरा हुआ।

'लंकाकांड' का आरंभ होता है। सेतुबंध बंधा। भगवान राम ने कहा, यह धरती उत्तम है। मेरी इच्छा है कि यहां भगवान महादेव की स्थापना करूं। हरि ने हर की स्थापना की। भगवान रामेश्वर की स्थापना। पूरी सेना लंका पहुच गई। शिखर के उपर प्रभु उतरे हैं। रावण अखाडे में मनोरंजन करने आया। प्रभु ने उसका महारस भंग किया। सुबह राजदूत के रूप में संधि प्रस्ताव लेकर अंगद गये हैं। संधि सफल न हुई। युद्ध अनिवार्य हो गया। एक के बाद एक वीर वीरगति पाने लगे। रावण और राम का धमासान युद्ध! इकत्तीस बाण चढायें। दस मस्तक, बीस भुजा और नाभि में इकत्तीसवां बाण मारकर रावण का निर्वाण। इकत्तीसवें बाण

में जीवन में पहली बार और आखिरी बार रावण 'राम' बोला! उसका तेज राम के चेहरे में समा गया! रावण का अग्निसंस्कार हुआ। विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। हनुमानजी को जानकीजी को खबर देने भेजे। अग्नि में समाहित जानकी प्रगट हुई है। सखाओं को साथ ले पुष्पक विमान उडान भरता है। भगवान ने हनुमानजी से कहा, तुम अयोध्या पहुंच जाओ। और विमान शृंगबेरपुर के किनारे; उन दलितों, उपेक्षितों, वंचितों, समाज का अंतिम वर्ग, जिसकी नौका में बैठ कर प्रभु गये थे उन्हें याद किए। प्रभु ने कहा, मैं तुम्हारी उतराई देने आया हूं। केवट रो पडा! 'प्रभु, वो तो बहाना था आपका दूसरी बार दर्शन करने का। और आपको उतराई देनी ही हो तो एक काम कीजिए, मैंने आपको नौका में बिठाया था, आप मुझे विमान में बैठाकर अयोध्या ले जाओ।' गांव में इतनी-इतनी आरती होती है। रामकथा इतनी-इतनी गायी जाती है। उसका एक ही कारण है, राम वो तत्त्व है जो आखिरी आदमी को भूले नहीं है। आखिरी व्यक्ति उन्हें दिखता रहता है।

'उत्तरकांड' में पूरे अयोध्या की आंख में आंसू है। एक दिन बाकी है। भरतजी विह्वल हैं। और जैसे डूबते आदमी को जहाज मिल जाये वैसे हनुमानजी आ गये! श्री हनुमानजी ने कहा, रावण को निर्वाण देकर जानकी सहित अनुज लक्ष्मण के साथ परमात्मा पधार रहे हैं। भगवान का विमान सरजू के किनारे उतरा। प्रभु नीचे उतरते हैं। जन्मभूमि को प्रणाम करते हैं और उनके साथ जो राक्षस और बंदर थे उन्होंने मनुष्य शरीण धारण किया! इसका अर्थ यही है कि रामकथा ये किसी भी जीव को मानव बनाने की फोर्म्यूला है। सुंदर शरीण धारण करके मित्र उतरे। प्रभु दौड़े हैं। इस तरफ सब से पहले परमात्मा ने गुरुदेव के चरण में दंडवत् किया है। भरत को देखे। दोनों भाई जब भेंटे तब किसी को पता न चला कि दोनों में से वनवास किसको था? रामजी को ऐसा लगा, समस्त अयोध्या चौदह वर्ष से मेरे साक्षात्कार की इच्छा करती है। और आज मेरे राघव ने ऐश्वर्य लीला की है! अमित अनंत रूप धारण किए हैं। जिनका जैसा भाव था, प्रभु ने उसे साक्षात्कार कराया है। और रामजी ने कहा, मुझे पहले कैकेयी माँ को मिलना है। माँ लज्जित है इसलिए प्रभु ने कहा कि माँ, तुमने मुझे वन में न भेजा होता तो मुझे पता कैसे चलता सीता का सत्य क्या होता है? जगत में सेवक कैसा हो? जगत में भाई कैसा हो? ये आपकी कृपा का परिणाम है।

वशिष्ठजी ने कहा, अब विलंब न कीजिए। आज ही राजतिलक कर दें। 'मानस' में लिखा है, राम सिंहासन के पास नहीं गये, दिव्य सिंहासन राम के पास आया है। सत् किसी दिन सत्ता के पास नहीं जाता। स्वयं सत्ता ही सत् के पास आती है। गुरु को प्रणाम किए। पृथ्वी को प्रणाम किए। ऋषिमुनि को प्रणाम करके भगवान ने दिशा को प्रणाम किए। अपने कुल के आदि पुरुष सूर्य को प्रणाम किए। माताओं को प्रणाम किए। प्रजा को प्रणाम किए। और भगवान राम गुरु की आज्ञा लेकर, माँ का आशीर्वाद लेकर सिंहासन पर जानकी सहित विराजमान हुए। विश्व को, त्रिभुवन को रामराज्य अर्थात् प्रेमराज्य देते हुए वशिष्ठजी ने राम के भाल में तिलक किया और मेरे तुलसी ने चौपाई लिखी है-

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

त्रिभुवन में प्रेमराज्य का जयजयकार हुआ है। माताएं आरती उतारी हैं। वेद भगवान ने राघवेन्द्र की स्तुति की है। फिर मित्रों ने बिदाई ली। एक हनुमानजी ही रुके क्योंकि हनुमानजी का पुण्य पूरा नहीं हुआ। समयमर्यादा पूरी हो गई। जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया, लव-कुश। तुलसीदासजी ने इतना ही लिखकर कथा पूरी कर दी। जिस प्रसंग में विवाद है, दुर्वाद है ऐसा सीता के सगर्भास्थिति में त्याग उसे तुलसी नहीं लिखते। तुलसी को संवाद चाहिए; विवाद नहीं चाहिए। इसीलिए जिन प्रसंगों में विवाद है उन्हें तुलसी स्पर्श नहीं करते।

रामकथा को पूरी की। बाद में कागभुशुंडि का चरित्र है। अंत में गरुडजी ने सात प्रश्न पूछा है तब सातों कांडों का निचोड मिला है। सद्गुरु के चरण में बैठकर खगराज ने कथा सुनी। याज्ञवल्क्य महाराज ने भरद्वाजजी के पास ये कथा पूरी की या नहीं यह स्पष्ट नहीं लिखा है। शायद गंगा, यमुना और सरस्वती, त्रिवेणी बहती रहेगी तब तक प्रयाग में याज्ञवल्क्य किसी न किसी रूप में ये कथा गाते होंगे। कैलास के ज्ञान शिखर पर बैठे धूर्जटि महादेव कथा को विराम दिए। तुलसी अपने मन को और साधु-संतों को कथा सुना रहे थे। उन्होंने अपने मन को कथा सुनाते-सुनाते अंत में संदेश दिया, इस कलियुग में दूसरा कोई साधन नहीं है। संत कर सकते हैं। हम जैसों के लिए तो तुलसी कहते हैं, कुछ नहीं होता तब तीन वस्तु; राम का स्मरण करो, राम को गाओ और समय मिले तब राम को सुनो।

तो बाप! चारों परम आचार्यो ने कथा को विराम दिया। आज भगवान गिरनार की तलहटी में साधना आश्रम के प्रांगण में पूजनीय बापू और तमाम संत, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष चेतनाओं की कृपा से नौ दिन के लिए आयोजित इस रामकथा 'मानस-रूखड़' को एक-दो बातें कहके विराम दूंगा। रामकथा हमने सुनी है। विषय बनाया था 'मानस-रूखड़।' मुझे अपने युवा भाई-बहनों को, अपने देश को, पूरी पृथ्वी को इतना ही कहना है कि जगत में संवाद रचाये, जगत में सेतु बंधे, जगत में से शस्त्र निकल जाये, सत्य, प्रेम और करुणा की मात्रा बढें और इस रूप में मुझे और आपको अल्लाह करे, रूखड़ समझ में आये ऐसी हरि के चरण में प्रार्थना करता हूं। समग्र आयोजन के लिए अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। यजमान परिवार, जिसके उपर इतने काम का बोझा हो, बहुत ही विवेक के साथ उन्होंने सभी व्यवस्थाएं की हैं। सरकार और समग्र व्यवस्था तंत्र, हमारे युवा अधिकारी, मूल में तो साधु-संतों की कृपा। ये सब इकठ्ठा हुआ और ऐसा प्रेमयज्ञ आज परमविश्राम के साथ संपन्न हो रहा है।

खास तौर से युवान भाई-बहनों, इतने प्रेम से आप कथा सुने हैं तब नौ दिन की रामकथा में से एकाध सूत्र आपके हृदय तक पहुंचा हो तो उसके पकड़े रखना। मैं एक ही विश्वास दे सकता हूं कि जीवन के किसी मोड पर ये आपको मदद करेगा। चाहे आपका 'बालकांड' चलता हो, चाहे आपके जीवन का 'अयोध्याकांड' चलता हो, चाहे 'अरण्यकांड' हो या कि जीवन का 'सुन्दरकांड' या संघर्ष काल 'लंकाकांड' चलता हो या जीवन के 'उत्तरकांड' में सभी उत्तर मिल गये हो। हरि का नाम या कोई सूत्र अथवा तो 'मानस-रूखड़' की दो पंक्तियां आपके पास होंगी तो मुझे जरूर ऐसा विश्वास है कि वो जीवन के किसी भी मोड पर बहुत ही मदद करेगी। नव दिन की कथा की बीजली चमकी है, उसे आंखों में भर रखना।

सितारों को आंखों में महफूज़ रखना।
बहुत दूर तक रात ही रात होगी।

मुसाफ़िर है हम भी मुसाफ़िर हो तुम भी,
किसी मोड पर फिर मुलाकात होगी।

- बशीर बद्र

कोई चित्रकूट के घाट पर, कोई भवनाथ के घाट पर, कोई दत्त और गिरनार के घाट पर यदि अल्लाह चाहेंगे तो राम के नाते फिर मिलेंगे। अपनी खूब प्रसन्नता व्यक्त करता हूं बाप! खास करके दत्त भगवान की कृपा, गिरनारी की कृपा, माँ अंबा की कृपा, भगवान भवनाथ की कृपा और ऐसे महापुरुषों ने उसकी साधना की है ऐसे संतों की कृपा प्रसाद। आपको अधिक पसंद आया हो तो उसे रखिएगा परंतु मकरंद भाई कहते हैं वैसा 'गमतांनो गुलाल' करियेगा। दीप से दीप प्रज्वलित करना, दीप दीक्षा करना। जिससे हमारे जीवन में विश्राम का अनुभव होगा। बाप! आशीर्वाद तो मैं क्या दूं? ये गिरनार दे, ये चमकता रूखड़ देगा। परंतु साधु कुल में जन्मा हूं, 'रामायण' गाता हूं इसलिए पोथी के पास बैठा हूं तब तक मैं हनुमानजी के चरण में आप सब के लिए प्रार्थना करता सकता हूं। मैं इतना ही कहूंगा, खुश रहो बाप! खुश रहो। कथा का कितना बड़ा सुक्रित इकठ्ठा होगा! कितने लोगों की सेवा का धर्मफल खड़ा होता है! इस नौ दिन की रामकथा प्रेमयज्ञ 'मानस-रूखड़', जगत के आदि-अनादि रूखड़, भगवान भवनाथ, भगवान महादेव है। शिव में समायी समस्त उज्वल विरक्ति से भरी हुई और रसपूर्ण समग्र चेतनाओं के साथ रखकर संतों की उपस्थिति में, संतों को साथ लेकर चलो ये नौ दिन की कथा मैं और आप भगवान शिव को अर्पण करें, ये हमारा अभिषेक है बाप! तेरे चरण में अर्पण करते हैं। कल तेरी शिवरात्रि है। शिव का कोई जन्मदिन नहीं होता; शिव का जागरण दिवस होता है। महाशिवरात्रि की सभी को, समस्त जगत को बधाई देते हुए आज की कथा को विराम देता हूं।

दीप सूरज में से प्रगटित हुआ प्रकाश तत्त्व है। और इसीसे मोमबत्ती प्रगटित करके चाहे जैसे भी उल्टी करे ज्योत तो उपर ही जायेगी क्योंकि उसे मालूम है कि मेरा उद्भवस्थान उपर है। अंश का अंशी की ओर गति करना ये उसका प्राकृतिक लक्षण है। पानी का स्वभाव एकदम नीचे जाना है। लोटे के पानी को ऐसे उछाल दीजिए, वो कुछ भी करके जमीन पर ही आयेगा, क्योंकि उसका अपने मूल की तरफ गति करना प्राकृतिक स्वभाव है। सूक्ष्म में से निकली विराट वस्तु चमचमाती हो तब उसी जगह नहीं रहती, वो सभी दिशाओं को खुशबू से भर देती है। रूखड़ अर्थात् फूल में से प्रगट हुई सार्वभौम सुगंध। एक माटी का दीया, प्रगटित किया हुआ दीप और उसका प्रकाश सब को प्रकाशित कर देता है, उस प्रकाशित तत्त्व का नाम रूखड़।

मानस-मुशायरा

सितारों को आंखों में महफ़ूज़ रखना।
बहुत दूर तक रात ही रात होगी।
मुसाफ़िर है हम भी मुसाफ़िर हो तुम भी,
किसी मोड़ पर फिर मुलाकात होगी।

– बशीर बद्र

दिल है उसी के पास, सांसें भी उसी के पास।
देखा उसे तो रह गई आंखें उसी के पास।
मज़हब का नाम दीजिए या और कोई नाम,
सब जा रही हैं दोस्तों राहें उसी के पास।

– गोविंद 'गुलशन'

जिस बुलंदी से इन्सान छोटा लगे,
उस बुलंदी पे जाना नहीं चाहिए।
जिस दीये में हो तेल खैरात का,
उस दीये को जलाना नहीं चाहिए।

–शहूद आलम आफ़ाकी

महोब्बत का कानों में रस घोलते हैं।
ये ऊर्दू जूबां है, जो हम बोलते हैं।
फले फूले कैसे ये गुंगी महोब्बत,
न वो बोलते हैं न हम बोलते हैं।

– शरफ़ नानपारवी

वो जहां भी रहेगा, रोशनी फ़ैलायेगा।
चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।

– वसीम बरेलवी

कवचिदन्यतोऽपि

'वैष्णवजन' हमारा राष्ट्रभजन है

'घूमता-फिरता गिरनार नरसिंह मेहता' विषय पर मोरारिबापू का विचारप्रेरक वक्तव्य

सबसे पहले परम वैष्णव नरसिंह मेहता की नामकुंडीय और गिरनारी चेतना को मेरा प्रणाम। आज के इस सुंदर प्रसंग पर अर्थात् श्री अरविंदराय केशवलाल वैष्णव चेरिटेबलट्रस्ट द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में, अरविंदबापा वैष्णव के समग्र परिवार का स्मरण करता हूं। आज के इस कार्यक्रम में मंच पर बिराजमान आदरणीय पद्मश्री गुणवंतभाई शाह, भरतभाई सोलंकी, किरण, वैष्णव इस चेरिटेबल ट्रस्ट के मेनेजिंग ट्रस्टी है, अन्य सभी लोग, भाग्येशभाई, बकाभाई, आप सभी को नमन। और जिन्होने खूब सुंदर कंठ से सम्यक्रूप से 'वैष्णवजन तो तेने रे कहीए' इस पद का गायन किया ये सभी कलाकार उपरांत 'बड़े भाग मानुष तनु पावा।' यहां वडोदरा आता हूं तब यह 'मानस' की चौपाई सतत मेरे मगज में रहती है। इस वडोदरा के संस्कारी सभी भाई-बहन और यद्यपि नरसिंह मेहता की कोई नात-जात थी नहीं और इसीलिए ही ईश्वर ने नागरों को प्रेरणा देकर उसे नात से बाहर कराया था। इसको समझ लेना चाहिए। कोई नागरी नात उसे बाहर नहीं कर सकती पर ईश्वर ने-हाटकेश्वर ने उसे प्रेरणा दी। ये नात-जात में मानता नहीं है, इसको नात बाहर करो! ओलरेडी विश्व को एक मेसेज गया कि नरसिंह की कोई नात-जात नहीं है। उसके इस उत्तम कार्यक्रम में लगभग सभी नात इकठ्ठी हुई है। चंद्रेश मकवाणा का शे'र कहता हूं साहब!

एक मूरखने मींढो गणवा,
भेगी थई छे नात कबीरा।

ऐसी एक गज़ल है चंद्रेश की। नात को जय हाटकेश, बाप! नरसिंह मेहता मुझे पसंद है। परंतु मुझको अधिक पसंद है इसका एक विशेष कारण यह है कि मेहताजी को छसौ वर्ष हुआ न लगभग? और तुलसीदास को पांच सौ वर्ष के लगभग। इसलिए 'वैष्णवजन तो' नरसिंह मेहता ने गाया है उसके तमाम सूत्र तुलसी के 'रामचरित मानस' में आये हैं। परम चेतना को कौन आगे, कौन पीछे ऐसी स्पर्धा नहीं होती, परंतु कालगणना में नरसिंह आगे हैं। तुलसी उसके बाद सोलहवीं शताब्दी में। नरसिंह मेहता थोड़े आगे हैं। यह 'वैष्णवजन' तो मुझे वैसे पूरा आता है। किसको नहीं आयेगा? 'वैष्णवजन तो तेने रे कहीए', इस पद का क्या कहना, वैसे कहने को यदि कहा जाये तो मैं ऐसा कहूंगा

कि भारत के पास एक राष्ट्रगीत तो है, पर राष्ट्रभजन हो तो 'वैष्णवजन' को कहेंगे। यद्यपि वो वैश्विक है। उसे मैं केवल भारत की सीमाओं में नहीं बांध सकता और उसको वैश्विक बनाने में जबरदस्त योगदान किसी ने दिया हो तो विश्ववंद्य गांधीबापू को श्रेय जाता है। इसलिए गांधीबापू को भी आज के उत्तम प्रसंग पर याद करता हूं। यह राष्ट्रभजन है। इसमें 'वैष्णवजन' शब्द है पर ये 'वैष्णवजन' शब्द भी मेरी दृष्टि से कोई एक ग्रुप के खातिर शब्द नहीं है।

यह वैश्विक वैष्णवजन का पद है। विश्व में जिस-जिस धर्म में, जिस-जिस उपासना पद्धति में, जो-जो कोई समर्थ महापुरुष हुए हैं वे वैश्विक वैष्णवों को भी हमारे समक्ष उनका परिचय कराये ऐसा एक ये वैश्विक पूकार पद है। मैं इसे राष्ट्रभजन कह सकता हूं कि यह पद राष्ट्रभजन है। और गांधी ने इसे स्वीकार किया हो तो राष्ट्र को स्वीकार करने में अड़चन नहीं हो सकती। यद्यपि गांधी को कितना स्वीकारते हैं हम सभी, इसका मनोमंथन करने की जरूरत है! क्योंकि आज़ादी आयी इसके पहले एक कांग्रेस सभा में गांधीबापू जो वेदना व्यक्त करते हैं, अब मेरा कोई सुनता नहीं है! एक प्रार्थना सभा में बापू बोले हैं कि अब मेरा कोई सुनता नहीं है! मेरा सुना होता तो देश का विभाजन नहीं होता। मेरा सुना होता तो पंजाब का विभाजन नहीं होता। मेरा सुना होता तो नवाखली कांड न होता। मेरा सुना होता तो ये नहीं होता! और फिर शब्द प्रयुक्त किया है बापू ने कि मैं अब 'अरण्यरुदन' कर रहा हूं ऐसा मुझे लगता है। पहले मैं बहुत बड़ा आदमी था। अब मैं बहुत छोटा आदमी बन चुका हूं।

तो बापू ने जिस पद को गाया, गवाया ऐसे इस भजन के लिए मैं आऊं और अपने लिए स्वीकार करे तो मुझको खुशी होती है। मुझे नरसिंह मेहता के विषय में बोलना है और कुछ शीर्षक भी ऐसा है कि 'घूमता-फिरता गिरनार नरसिंह मेहता।' नरसिंह मेहता का ऊंचाई के साथ भी संबंध था। इस आदमी की गहराई। अभी दामाकुंड भले हमको बार-बार स्वच्छ करना पड़े अथवा अपनी आदतों के अनुसार हम बार-बार उसे गंदा करें! वो तो हमारी भावुकता है। पर उसकी गहराई नरसिंह मेहता में है। और गिरनार का शिखर, वो सिद्धि, वो ऊंचाई तो नरसिंह की है ही। इसीलिए वेदांत में किसी को साधु-संन्यासी बनाया जाता तो फिर दशनाम संन्यास में गिरि, परी, भारथी, आनंद, सागर ऐसा सब लगाया जाता है कि विष्णुदेवानंदगिरि। उसी तरह ये नरसिंह मेहता पक्का वेदांती महापुरुष है। और उसे यदि कोई वेदांत की दीक्षा दे और संन्यासी बना दे उदारतापूर्वक कोई, तो नरसिंह मेहता को 'नरसिंहगिरि' शब्द आना चाहिए। उसकी सरनेम में 'गीर' आना चाहिए। क्योंकि बहुत सच है, ये हिलता-डुलता, घूमता-फिरता गिरनार है। तो बाप! मेहताजी के जीवन के अनेक प्रसंग है, उसमें भी थोड़ी श्रद्धामय प्रसंग है। केवल श्रद्धा से ही स्वीकार किया जा सकता है। वैचारिक भूमिका पर शायद न भी स्वीकार किया जा सके। उसका अलग ढंग से हमें मूल्यांकन करना चाहिए। खैर! उसे हम छोड़ दे। परंतु नरसिंह मेहता को केन्द्र में रखकर हम विचार करे तो पांच प्रसंगों पर अधिक ध्यान जायेगा। वैसे तो अनेक प्रसंग है, पर श्रद्धाजगत उसे अलग ढंग से मानता है। विचारजगत उसे अलग ढंग से देखता है। पांच प्रसंग हमारी नज़रों में पड़ते हैं। एक तो रासलीला का दर्शन। कृष्ण की रासलीला का यह दर्शन नरसिंह मेहता को शिवजी की कृपा से हुआ। और हम प्रसंग जानते हैं कि हाथ में मशाल लेकर नरसिंह मेहता उसका दर्शन करते हैं। और इसलिए तो अपने कवि राजेन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि -

हजो हाथ करताल ने चित्त चानक,
तळेटी समीपे हजो क्यांक थानक।

और

तळेटी जतां एवुं लाग्या करे छे।
हजी क्यांक करताल वाग्या करे छे।

इसी तरह मनोजभाई भी, गिरनार का कवि लिखते हैं। तो मशाल लेकर उस रासदर्शन में नरसिंह मेहता खड़े हैं और मशाल तो गांव में जिन्होंने देखा होगा उसको खबर पड़ती कि बार-बार उसमें तेल भरना ही पड़ता है। तो ही वो जलती रहती है। और रास में इतना अधिक वे डूब जाते हैं कि फिर वो तेल भरना भूल जाते हैं। और हम सब जानते हैं कि फिर उनका हाथ जलने लगता है। अब ये श्रद्धाजगत की बात कहलायेगी। और वैसे गिने तो भान भूलें तो हाथ जलने भी लगेगा। पर मुझे ऐसा समझ में आया है कि यह निवेदन आज नहीं कर रहा हूं, दो-तीन बार पहले कहा है कि जब तक काया जलती नहीं तब तक कृष्ण दिखते नहीं हैं। ये विचार इस आदमी को देना था। और हाथ, अपने हाथ से मैं ऐसा कर डालूं! मेरे हाथ लंबे हैं! आज की भाषा में कहूं तो दिल्ली तक मेरा हाथ!। हमारे एक भगवानजी बापा शर्मा थे लाठी के। रामकथा के बुज़ुर्ग गायक, खूब पूर्वसूरि। एक बार हमारे नाथद्वारा में कथाकारों की त्रिवेणी

थी और बापा पधारे। फिर बिदा होते समय मैंने उनसे विनती की कि बापा, गाड़ी की व्यवस्था कर दें। और आप गाड़ी में जाईये। बस में मत जाओ। हम सब गाड़ियो में घूमते हैं और आप! यह हमें शोभा नहीं देता। तो उन्होंने मुझे जवाब बहुत अच्छा दिया कि बेटा, लंबा हाथ हो न तो सेहूंण की बाड में नहीं डालते! उसका अनुचित लाभ नहीं लेना चाहिए। इसलिए हाथ को मैं ऐसे कर डालूं या ऐसे कर दूं। वेद ने हाथ के लिए व्याख्या किया वो तो स्वीकार्य है। 'अयं मे हस्तो भगवान्। अयं मे भगवत्तर।' परंतु मेरे हाथ इतने लंबे हैं कि मैं चाहे उसका गला पकड़ लूं, चाहे उसे ऐसा करके! उस हाथ को इस आदमी ने जलाया मतलब कि हाथपने को जलाया कि मैं ही करूं को उसने जला दिया। और नरसिंह मेहता स्वयं गाते हैं। तुम्हारी आज्ञा हो तो गाऊं?

हुं करुं हुं करुं ए ज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे।

यह 'मैं करता हूं, मैं करता हूं, मैं करता हूं' रूपी हमारा कर्तव्य जब जल जायेगा तब शायद कृष्ण की रास में हमारा प्रवेश हो सकेगा। तो रासदर्शन नरसिंह मेहता के जीवन का एक अद्‌भुत प्रसंग है।

दूसरा प्रसंग है हारमाला। जिस समय नरसिंह केदार गाये और भगवान को हार पहनाये। जिसमें श्रद्धा होगी तो ही ये सब समझ में आयेगा। हारमाला का प्रसंग; हम सब जानते हैं कि हरि ने उन्हें हाथोंहाथ हार पहनाया था ये दूसरा प्रसंग है। तीसरा प्रसंग कुंवरबाई का मामेरा। अपनी पुत्री का मामेरा भरने के लिए ठाकुरजी आये, हरि आये, ऐसा अपनी श्रद्धा कहती है। चौथा प्रसंग शामल का विवाह। पांचवां प्रसंग, वैसे तो मैं बहुत गाता हूं घंटों तक नरसिंह मेहता के पिता का श्राद्ध। परंतु उसकी अपेक्षा वो हूंडीवाला प्रसंग पांचवां प्रसंग है। खैर! आज के समय के अनुसार, देशकाल के अनुसार उसका आंतर्‌दर्शन होना चाहिए कि हरि काम कर गये या ऐसे हुआ, ऐसे हुआ, ऐसे हुआ! वह कुंवरबाई के ननिहाल में जो वो पत्थर रखवाना, ऐसा सासु बोली न और उसके बदले सोने की ईंट हो गई और ये सब जो बातें हैं! फिर जलन मातरी को याद करना पड़ेगा कि -

श्रद्धानो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?
कुर्रानमां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

पांच प्रसंग मुझको और आपको रोमांचित अवश्य करते हैं, प्रसन्न अवश्य करते हैं, थोड़ी आर्द्र अवश्य करते हैं। और प्रेमानंदी पद्धति में, माणभट्ट वडोदरा में हैं धार्मिक बापा अभी, उन्हें मैं याद करता हूं कि अभी उन्होंने ये परंपरा सुरक्षित रखी है। प्रेमानंद ने यहां यह एक व्रत लिया था कि पगड़ी नहीं पहनूंगा जब तक ऐसा नहीं होगा। इसका अर्थ ऐसा होगा कि जब तक पूरा काम नहीं कर लूं तब तक अहंकार नहीं ही करूंगा। अपनी पगड़ी रख दूंगा। अपना मस्तक रख दूंगा। अपनी बुद्धि को रख दूंगा। तो ये जो चमत्कारिक प्रसंग है इनका अलग तरह से मूल्यांकन होना चाहिए। श्राद्ध का प्रसंग मैं ही कहता हूं। मुझको आनंद मिलता है इसलिए मैं कह रहा हूं भगवान आये और ये सब किये। परंतु इसको भी कुछ अलग ही ढंग से मूल्यांकन करने का समय हो गया है कि आज मेरे और आपके पास सही नरसिंह मेहता हमें दर्शन दे। इसी तरह ही हूंडी का प्रसंग है। ये पांचों प्रसंग; वैसे तो बहुत से प्रसंग उसके चारों तरफ हैं। और ऐसा नरसिंह मेहता को जिसमें दामाकुंड की गहराई और गिरनार की ऊंचाई है, जिसको ये भेद नहीं है। एक तरफ परम वेदांत का शिखर है और दूसरी तरफ परम भक्ति का तल है दामाकुंड का। इन दोनों का जिसमें समन्वय हुआ है ऐसा 'नागर नरसिंह महेतो, जूनागढमां भूधरनो भक्त कथा कहुं हुं तेनी', ऐसा कहते हुए आख्यानकार बहुत मुक्त कंठ से उसको प्रस्तुत करते हैं।

यह पद 'वैष्णवजन तो', मैंने शायद जूनागढ में निवेदन किया है कि ये वैश्विक वैष्णव के लिए अठारह अध्याय की 'वैष्णवी गीता' है। इसमें अठारह ही सूत्र है साहब! उन्नीसवां नहीं है। फिर आप अलग करो और मुझे गलत ही ठहराना हो तो नात बैठी है मेरे बाप! कि नहीं, बावा को गलत ही ठहराना है! इसमें उन्नीस होता है, बीस होता है। अठारह सूत्र हैं। इसके विषय में थोड़ी कहके अपनी बात मैं पूरी करूंगा। अठारह सूत्र मुझे समझ में आये हैं। वैष्णवजन के सभी सूत्र तुलसी के 'रामचरित मानस' में, एक जवाबदारीपूर्वक उसकी चौपाई में मैं आपके समक्ष रख सकूंगा कि ये सूत्र यहां लागू पड़ता है। यह सूत्र इस चौपाई में है, ऐसा एक गुरुकृपा से मैं कह सकता हूं। इसलिए यह पद जो है वो वैश्विक वैष्णवी 'भगवद्‌गीता' है, इसमें अठारह सूत्र हैं।

पहला सूत्र, 'वैष्णवजन तो तेने रे कहीए जे पीड पराई जाणे रे।' सीधा-सादा सूत्र है कि जिसे दूसरे की पीड़ा का अनुभव हो उसे वैष्णव कहेंगे। यह पहला अध्याय। दूसरे

की पीर देखकर जिसके अंदर विषाद हो वह पहला 'विषादयोग'-'भगवद्गीता।' या पीड़ा, मुझे पीड़ा होनी चाहिए। एक वस्तु आप-से पूछुं साहब कि सभी ऐसा कहते हैं कि साधु-संत हैं उसे दु:ख? उन्हें दु:ख का पता नहीं होता। वो कहीं दु:खी होगा ही नहीं। यह कोई बहुत सही हो ऐसा लगता नहीं है। फिर कहने के खातिर आप कह दो और फिर चढ़ा दो कि अब तो आप बापू हैं, आपको तो कोई दु:ख होगा ही नहीं! ऐसा कुछ होता नहीं है। सभी को दु:ख होता ही है क्योंकि कृष्ण ने कहा है कि यह जगत दु:खालयम् है। और साहब, ए.सी. के रूम में आप किसी साधु को बैठाएं तो उसे ठंडी नहीं लगेगी? उसको शीतलता नहीं महसूस होगी? राजस्थान के रण में, वैशाख में आप उसे नंगे पैर भटकाएं तो उसके पैर नहीं जलेंगे? जलेंगे ही। यह जगत यदि दु:खालय हो तो कोई साधु-संत जो हो उसे दु:ख होगा। पर मेरे और आपके दु:ख में और साधु-संत के दु:ख में इतना फ़र्क है कि हमें हमारी पीड़ा का दु:ख है, वो 'पीड पराई जाणे रे।' उसे दूसरे की पीड़ा का दु:ख है। अब तुलसी कहते हैं -

साधु चरित सुभ चरित कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा ।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा ।।

साधु दु:खी होता है, ऐसा तुलसीदासजी कहते हैं, परंतु 'जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।' जैसे कपास का फूल या हरा कपास जिसने देखा होगा, अब तो मुझे खबर नहीं कपास में भी वर्ण संकर आदि-आदि जो कुछ जात आयी होगी। उसकी पंखुड़ियां शायद बहुत होगी। परंतु मूल गांव में जिसने कपास देखा होगा उसकी तीन पंखुड़ियां होती है हरी। और वो तीनों पंखुड़ियां हरी होती है फिर भी अंदर जो फूल-कपास निकलता है वो नीरस होता है, शुभ्र होता है। वो सबके बीच रहता है। तीनों पंखुड़ियां; प्रत्येक रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण के ये तीन पत्तों में ही रहता है। साधु भी उसमें ही होता है। परंतु फ़र्क इतना ही कि ये तीनों पंखुड़ियां वैसे होती हैं लगी हुई पर फिर भी थोड़ी अलग होती हैं और उसमें साधुता नीरसता लेकर अनासक्तिभाव लेकर आती है। तो साधु को पीड़ा होती है, दु:ख होगा। बहुत-से ऐसा कहते हैं कि साधु-संत मरते नहीं है। ऐसा बहुत खूब चला! पर उसे मरने दो न शांति से! एक उर्दू का शे'र है साहब -

सिर्फ़ हवाओं पे शक गया होगा।
चराग खुद ही जलते-जलते थक गया होगा।

परंतु शक गया हवा पर कि इसने दिया बुझा दिया! पर आखिर चिराग दूसरे से नहीं बुझता, वो तो खुद ही जलते-जलते थक जाता है और फिर विश्राम की ओर गति करता है। तो साधु को भी दु:ख होता है पर दूसरे की पीड़ा का उसे विचार शुरू होता है ये पहला सूत्र। 'भगवद्गीता' को छूता हुआ और तुलसी जिसको स्पर्श करते हैं उसे नरसिंह उसी परंपरा में वो मुझको पहला अध्याय लगता है। 'वैष्णवजन तो तेने रे कहीए जे पीड पराई जाणे रे।'

दूसरा, 'पर दु:खे उपकार करे', यह दूसरा अर्थ हुआ। दूसरे के ऊपर उपकार करें। अपने ऊपर तो सभी उपकार करते हैं। अपने ऊपर भी बहुत से जुल्म करते होते हैं! पर कवि काग का एक दोहा है -

पोता सौ पोतातणां पाळे पंखीडां,
पण बचडां बीजानां को'क ज सेवे 'कागडा।'

दूसरे के दु:ख से, परदु:खे उपकार करे, दूसरे के दु:ख की जिसको पीड़ा हुई हो और फिर बाद में जो उपकार करता है उसी बात को तुलसी अपनी चौपाई में लिखते हैं -

पर उपकार बचन मन काया ।
संत सहज सुभाउ खगराया ।।

हे गरुड! दूसरे के ऊपर सतत उपकार करना ये वैष्णव का असली लक्षण है। इसलिए यह दूसरा सूत्र और दूसरा अध्याय लगता है। और बहुत लंबी गिनती नहीं इससे एक में से दो हुए अर्थात् थोड़ा सांख्य आ गया है इसलिए यह दूसरा अध्याय 'सांख्ययोग' हो गया। फिर 'मन अभिमान न आणे रे', यह तीसरा अध्याय कि दूसरे के दु:ख पर उपकार करे, उसकी पीड़ा में भाग ले फिर भी 'मन अभिमान न आणे रे।' अब ये तो बड़ा कठिन पेपर है! कितना कठिन! कोई नहीं पूछेगा तो हमें कहने की इच्छा होगी, 'उसमें हमने तो थोड़ा सहारा दिया; ईश्वर भी मुझे निमित्त बनाया है।' पर तू बोलना बंद कर न! तेरे बिना कितने को निमित्त बनाया था पर तू चढ़ बैठा!

'मन अभिमान न आणे रे।' तुलसीदासजी कहते हैं, 'अहंकार अति दुखद डमरुआ।' अहंकार तो पेट की वृद्धि की पीड़ा है। अहंकार पेट बढ़ा देता है। छोटी-छोटी वस्तु का अहंकार मुझे और आपको स्पर्श करता है। यह

उपदेश नहीं है। हम सबके अनुभव हैं। हम बात करते हैं पर हमको वैसे कहीं तो कुंपलें फूटती ही हैं। गुणवंतभाई, भद्रायु ने 'सो मूठी ऊंचेरा मानवी' की पुस्तक तैयार किया। उनके इन्टरव्यू लेकर ये सब किया और फिर मुझको उन्होंने पुस्तक दी। उसमें सभी सौ महानुभावों के फोटो थे। अब पुस्तक दी इसलिए सहज उसमें मैंने अपना फोटो ढूंढा। कहीं दिखा ही नहीं! बार-बार पृष्ठ पलटा कि अपने इसमें नहीं आते यार! 'मूठी ऊंचेरा' में हम नहीं! इसलिए मैंने दो-तीन बार ऐसे-वैसे देखा! मेरी कोई भूल तो नहीं हो रही है न? चश्मा चढ़ाकर देखा, चश्मा निकालके देखा! पर मोरारिबापू कहीं दिखे ही नहीं। फिर सभी शीर्षक देख गया कि सौ मैं मेरा नाम ही नहीं! यह घटित घटना है। फिर मुझे वैसे आश्वासन कैसे लेना? मानव हूं न साहब! मोरारिबापू को मोरारिबापू ही रहने दो यार! दूसरा सब छोड़ दो। मैं मानव हूं, मेरी कमजोरियां होगी। मैंने कहा, इस भद्रायु को इतना पता नहीं होगा? उसकी दो पुस्तकों का मैंने विमोचन किया है और ये आदमी इतनी भूल तो नहीं करेगा! पर फिर मुझको आश्वासन खूब अच्छा मिला कि उसमें गुणवंतभाई भी नहीं थे! फिर मुझको इतनी शांति मिली कि इसमें गुणवंतभाई नहीं है तो हम तो होंगे ही नहीं न साहब! इसमें क्या है?

जनाजो जशे तो जशे कांधेकांधे,
जीवन पण गयुं छे सहारेसहारे।

अपने अहंकार को पोषने के लिए हम ऐसे सहारे लेते रहते हैं। परंतु विमोचन किया तब मुझे पता चला। भद्रायु खुद ही बोले कि बापू, मैंने आपको तीन बार विनती की कि सबसे पहले आपका इन्टरव्यू लूं पर आपने समय ही नहीं दिया। मैं क्या करता? तब मुझको शांति हुई, तो तो ठीक है। बाकी हम है तो सही न! ये अहम्पना; 'मन अभिमान न आणे रे', साहब! और सही कर्मयोग ही यही है। कोई भी कर्म करे उसका अहंकार आता है पर कर्म करने के बाद जिसका अहम्पना मिट जाता होगा वो ये 'अकर्मण्यता।' यही किंचित 'भागवद्गीता' का तीसरा अध्याय बन जाता था। चौथा सूत्र, 'सकल लोकमां सहुने वंदे।'

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

तुलसी तुरंत आकर खड़े होते हैं कि पूरे जगत में सबकी वंदना करते हैं।

अगर तू मस्जिद में है तो मंदिर में कौन?
अगर तू बस्ती में पलता है तो विराने में कौन?

'सकल लोकमां सहुने वंदे', 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म।' यह वेदांत का सूत्र नरसिंह मेहता ने भक्तिपरक बनाया और तुलसी उसकी सकललोक में सब की वंदना करते हैं और चौथे सूत्र के रूप में स्थापित करते हैं, 'निंदा न करे केनी रे।' ये कठिन है। वैसे तो सभी कठिन हैं! पर दूसरे की निंदा नहीं करनी चाहिए। तुलसीदास से पूछा गया कि आप अहिंसा किसे कहते हैं? आपकी दृष्टि से अहिंसा का क्या अर्थ है? तब तुलसीदास की एक चौपाई है -

पर निंदा सम अघ न गरीसा।

बड़ी से बड़ी हिंसा यो है, बड़े से बड़ा पाप ये है कि आप दूसरे की निंदा करे। और किंचित् मुझे या आपको माया के कारण, अपनी मूढ़ता के कारण इसका एक व्यसन हो गया है। दूसरे व्यसन तो अच्छे हैं कि छूट जाते हैं, पर यह निंदा का जो व्यसन है, चतुर मनुष्य भी करते होते हैं! सामने हो तब कुछ कहेंगे, पीछे हो तब कुछ और! और फिर क्या कहते हैं, हम किसी की निंदा नहीं करते! तो तू क्या ये भागवत् की स्तुति कर रहा है? तो तू क्या ये भीष्मस्तुति गा रहा है? ये सब क्या उठाया है? यह तू निंदा नहीं कर रहा है तो ये क्या है? 'निंदा न करे केनी रे।' नरसिंह मेहता के ऊपर इतना सब गुज़रा साहब! उस काल में, छसौ वर्ष पहले ये आदमी समाज के बीच जाकर कीर्तन करता है, भजन करता है साहब! आप कल्पना कीजिए! अभी भी तो ऐसा थोड़ा हम नरसिंह मेहता के पीछे-पीछे करने जाते हैं तो धर्मनाम का कोड़ा खाना पड़ता है! सामने नहीं बोलेगा तो पीछे से हमला करेगा! परंतु सहज करना पड़ता है कि ये सब क्या उठा रखा है सबको अपनाना? पर नरसिंह मेहता के पदचिह्नों पर चलना हो तो निंदा कैसे होगी साहब! अब ये कैसे छूटेगी? निंदा कैसे जायेगी? मैं जो समझा हूं कि निंदा नहीं करनी चाहिए। डोक्टर हमारी और आपकी बीमारी को पकड़ता है तो वो निंदा नहीं करता कि आपने ये छाछ पिया है और आपने ये किया है! आपने गलत वो किया वह हमारा निदान करता है इसलिए हमें प्रसन्न होना चाहिए। हमारे नीतिन वडगामा का एक वाक्य है, सार्वजनिक किसी की प्रशस्ति नहीं करनी चाहिए, परंतु प्रतीति तो कहनी ही चाहिए। कुछ हमें अनुभव हुआ हो तो क्या करें हम छुपा सकते हैं? तो, 'निंदा न करे केनी रे।' ये आगे का सूत्र है। और 'वाच-काछ-मन निश्चल राखे', कितना कठिन! वाच-काछ और मन को निश्चल रखो।

निश्चल रखना मतलब वैसे अचल रखना। वो तो गिरनारी होगा वही कर सकता है। और गिरनार यानी साहब, अवधूत की तरह अचलता। यह गिरनारी कवि है। यह नरसिंह मेहता ही कर सकते हैं और मुझे सलाह दे सकते हैं कि इन दोनों को और मन को जो मजबूत रखता है। उसके आगे का सूत्र है, 'वाच, काछ, मन निश्चल राखे, धन्य धन्य जननी तेनी रे।' चौथा सूत्र, किसकी माता धन्य है? मेरे तुलसी कहते हैं, पुत्रवाली माँ कौन?

पुत्रवती जुबती जग सोई ।
रघुपति भगतु जासु सुतु होई ।।

पुत्रवती वो है, धन्य माता वो है कि जिसकी संतान ऐसा दिव्य काम करती है, दिव्य जीवन जीती है। वो माता को धन्य करता है, माता का गौरव होता है, माता को परितृप्ति मिलती है अपने बालक से। 'धन्य धन्य जननी तेनी रे।'

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ।।

तो कुल धन्य है, माता को धन्यवाद है जिसके कुल में रघुबीर परायण, सत्यपरायण, प्रेमपरायण, करुणापरायण किसी पुत्र का जन्म हो। आगे का सूत्र, 'समदृष्टि ने तृष्णात्यागी।' 'भगवद्गीता' को याद करना पड़ेगा।

सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।

समदृष्टि; समस्त जगत पर ममता रखता हो कोई महापुरुष और फिर भी उसकी समता निंदित न हो, ऐसी जिसकी समदृष्टि हो। 'सीय राममय सब जग जानी।' यह वृत्ति जिसमें आयेगी। और 'तृष्णात्यागी', जिसने तृष्णा का त्याग किया हो। 'सुत बित लोक ईषना तीनी।' मेरे तुलसी कहते हैं, तीन प्रकार की एषणा है - सुत, वित्त, लोक। सुतेषणा, लोकेषणा और वित्तेषणा नरसिंह में नहीं दिखती। 'मारी हूंडी स्वीकारो महाराज रे', जिसकी हूंडियां स्वीकृत हो। जिसको वित्तेषणा होगी उसकी हूंडी स्वीकार्य नहीं होती। और सुतेषणा, पुत्र की इच्छा नरसिंह को हुई होगी? हाटकेश्वर की कृपा से पुत्र भी हुआ परंतु एषणा नहीं। पुत्र की मृत्यु हो और फिर भी ये आदमी हिला नहीं। तृष्णा हो तो रूला डाले। तो तो समदृष्टि कैसे कहेंगे? तो तो तृष्णात्यागी कैसे हो सकता है? और लोक एषणा होती तो तमाम नात-जात को एक ओर छोड़कर मैंने जैसा कहा वैसी जगह जाकर उस समय से कीर्तन करते, उसे स्वीकारते, उन्हें अपनाते? और अभी भी मेरा तो मानना अवश्य है कि किसी को सुधारने की कोशिश बहुत नहीं करनी चाहिए। जो आये उसको स्वीकार करने की कोशिश करनी चाहिए। 'महाभारत' में तो उस युधिष्ठिर ने अर्जुन की गांडीव का अपमान किया तब गांडीव का अपमान करेगा उसे मैं मार डालूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा लेकर बैठा अर्जुन जैसे युधिष्ठिर को मारने जाता है और भगवान कृष्ण ने जो बीच का रास्ता निकाला कि अपने से बड़ा हो उसका अपमान करते हुए दो-चार शब्द बोलो यानी बध हो गया! और फिर अर्जुन थोड़ा बोल गया इस तरह निर्वाण हुआ परंतु फिर अर्जुन को पस्तावा होता है कि मैंने बड़े भाई को गाली दी! इसमें से मुझे कैसे मुक्त होना? तो अपनी प्रशंसा अपने ही मुख से करने लगो यानी आपका वध हो गया। स्वयं मरने को तैयार हो गया कि मैं मर जाऊंगा। तो कहते हैं, अपने मुख से अपना बखान कर। यह लोकेषणा बहुत कठिन है। हमें कैसे छोड़नी? मुश्किल है। खैर! 'समदृष्टि ने तृष्णात्यागी, परस्त्री जेने मात रे।' तुलसीदासजी लिखते हैं, 'परधन, परअपवाद, परनारी', ये पांच 'पर' तुलसीदासजी ने बताया उसमें से जो -

जननी सम जानहि पर नारि ।
धन पराय विष ते विष भारी ।।

वाल्मीकि के मुख से तुलसी ने ये शब्द बुलवाया है। तो 'परस्त्री जेने मात रे', बहुत कठिन है। कोई गांधी, कोई महापुरुष जो इसमें से कह सकता है। गांधीजी तो कस्तुरबा को 'बा' ही कहते थे न? 'जिह्वा थकी असत्य न बोले।' तुलसी लिखते हैं -

नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ।।

करोड़ो-करोड़ो घूंघची इकठ्ठा करें तो भी गिरनार नहीं हो सकता साहब! वैसे चाहे जितने छोटे-बड़े पाप इकठ्ठा करें तो भी असत्य जैसा दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं हे। यह तुलसी का सूत्र शायद नरसिंह में से उपजा होगा; शायद गिरनार में से उपजा है ये, ऐसा कहने में मुझको बिल्कुल आपत्ति नहीं है। 'जिह्वा थकी असत्य न बोले', मैं इस सत्य, प्रेम, करुणा की बातें करता रहता हूं। मैं कोशिश करता हूं जीने की प्रामाणिकता के साथ। विनोबाजी ने सत्य, प्रेम, करुणा के सूत्र खूब लिखे। और यह मुझे मेरी रामकथा की यात्रा में खूब ही पूर्ण सार लगा इसलिए मैंने इन तीनों सूत्रों को लिया है। जितने मात्रा में सत्य अपने पास होगा न उतना ही फायदा है। पूरेपूरा तो कोई गांधी, कोई-कोई संभाल सकता है। परंतु जितनी मात्रा में सत्य

होगा वो वैष्णव का लक्षण है। विद्यार्थी का इन्टरव्यू था। पहला विद्यार्थी आया। इन्टरव्यू लेनेवाले ने पूछा कि सत्ताईस में पांच मिलाए तो कितना होगा? तब विद्यार्थी ने कहा, पचास। सत्ताईस में पांच मिलाएं तो पचास! अनुत्तीर्ण ही होगा न? जाओ। उसके बाद दूसरा आया। वही प्रश्न, सत्ताईस में पांच मिलाए तो कितना होगा? तो बोला, तिरपन। तुम क्या पढ़के आये हो? वह भी अनुत्तीर्ण। तीसरा आया। उससे पूछा, सत्ताईस में पांच मिलाए तो कितना होगा? तब उसने कहा, पैंतीस। उसे पास कर दिया। वह बाहर निकला। वे दो जन फेल हुए थे उन्होंने पूछा, तुमने क्या जवाब दिया? वो बोला कि मैंने पैंतीस कहा। तो उन्होंने कहा कि बाहर आकर हमने गिना कि सत्ताईस मैं पांच मिलाएं तो बत्तीस होते हैं। हम तो गलत थे और तू भी गलत है! परंतु मुझको मेरे साहब ने कहा कि मैं सत्य के नज़दीक था थोड़ा, क्योंकि कि बत्तीस होता है उसके बदले तुमने पैंतीस किया। इसलिए तुम सत्य के नज़दीक हो। सत्य के नज़दीक हो तो पास हो जायेंगे। पूरेपूरा सत्य तो बहुत मुश्किल है।

'परधन नव झाले हाथ।' मैं शिक्षक था तब स्कूल में कहता था कि एक विद्यार्थी के पास से उसका शिक्षक फीस मांग रहा था। लड़का गरीब था। फीस ला नहीं सकता था। एक दिन कठोर सूचना दी कि यदि कल रूपया फीस नहीं लायेगा तो तेरा नाम स्कूल में से निकल जायेगा। हमारा नियम है। कितना चलायें? और दूसरे दिन लड़का कुछ भी करके, रोकर ले आया। उसका बाप भी गरीब। रूपया दिया और ले आया। प्रार्थना शुरू हो गई। और देर हुई इसलिए शिक्षक ने उसे टोका, तूने देर क्यों लगाई? 'साहब, आपने कहा था न कि फीस नहीं लायेगा तो मैं तुझे निकाल दूंगा। तो मैं इसीलिए देर किया कि मेरा रूपया खो गया था रास्ते में और मैं ढूंढने में रह गया इसमें पंद्रह मिनट विलम्ब हुआ।' शिक्षक की करुणा जगी। बैठा दिया। उसके बाद दूसरा विद्यार्थी विलम्ब से आया। उससे पूछा, 'तू क्यों देर से आया?' तो बोला कि 'उसका जो रूपया खो गया था वो मैंने पैर के नीचे दबा रखा था इसलिए मैं देर से पहुंचा।' खोनेवाला विलंब में पड़ता है और दबानेवाला विलंब में पड़ता है साहब!

'मोह-माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।' मोह और माया व्याप्त न हीं। कृष्ण ने गुणमयी कहा माया को। वैसे ऊपर से माया बहुत अच्छी गुणवान लगती है पर उससे मुक्त होना मुश्किल है। 'दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे', मेहता की ये वैश्विक वैष्णवी 'गीता' कहती है, जिसके मन में दृढ़ वैराग्य होगा। निष्कुळानंद याद आते हैं -

त्याग न टके रे वैराग्य विना, करीए कोटि उपायजी।
अंतर ऊंडी इच्छा रहे, ते केम करीने तजायजी।

भर्तृहरि ने पूरा 'वैराग्यशतक' लिखा। सो श्लोक में उन्होंने ऐसा 'वैराग्यशतक' उतारा है। मेरे कहने का मतलब हमें दृढ़ वैराग्य अपनाना चाहिए। और मैंने एक भागवत कथाकार को सुना है। तलगाजरडा में उनकी कथा रखी थी। नरेन्द्रबापा; मुंबई के और बहुत विद्वान 'भागवत' के। मैंने उसको सुना था। उन्होंने बहुत सुन्दर व्याख्या की कि बापू, वैराग्य यानी छोड़ना नहीं परंतु अति शुभ हो उसे ग्रहण करना उसका नाम वैराग्य है। सब त्याग देना, भाग ही जाना और फिर निकल जाना, ये साहसी लोग कर सकते हैं।

'रामनाम-शुं ताळी रे लागी', रामनाम की जिसे ताली लगी हो। ताली लगी का दो अर्थ है। वैसे आप को पता है, हमें अमुक वस्तु का पान तालू पर चढ़ जाता है फिर नाक में से पानी निकलने लगता है। अमुक समय हमें कुछ समझ नहीं पड़ता। वैसे रामनाम जिसके तालू पर चढ़ गया हो उसकी सभी गंध छूट जाती है, स्पर्श छूट जाता है, रस छूट जाता है, रूप छूट जाता है। पांच विषयों से जो मुक्त हो जाता है। और आदमी कुछ अपनी ऊंचाई पर चढ़ जाता है। ऐसा जिसको रामनाम की ताली लगी हो पर वो तो 'रामबाण लगा हो वो ही जाने रे।' हम तो केवल तालियां बजवा गये और गवा गये।

'रामनाम-शुं ताळी लागी रे', बहुत ही सुन्दर। 'सकल तीरथ तेना मनमां रे।' हां, गिरनारी परिक्रमा किस लिए कहते हैं? गिरनार आमंत्रण देता है? परंतु उसकी अचलता और ऊंचाई मुझको ओर आपको चक्कर लगाने के लिए मज़बूर करती है कि तुम घूमो, परिक्रमा करो। और दूसरा वो निमंत्रण देता है कि तुम मुझको चारों तरफ से देख लो। फिर तुम्हारी परिक्रमा पूर्ण होगी। तुम मुझको चारों ओर से देख लो। हम बहुतों के पैर लागने में बहुत जल्दबाजी करते हैं। पहले परिक्रमा ठीक से कर लेनी चाहिए। चारों तरफ से देख लो। और स्वामी रामतीर्थ के जीवन की घटना है। लिखा है सरदार पूरणसिंघ ने कि एक आदमी आकर उनके पैर लागता, दंडवत् करता। ना पाड़ दिया इस बादशाह रामतीर्थ ने कि दंडवत् मत करो। मैं अभी जीनेवाला हूं। मुझे भगवान सो वर्ष का करे। पर यहां कमरा खाली है। तुम वहां रहो पंद्रह दिन। अगल-बगल के गांव में

मेरे विषय में पूछो। और मैं बराबर लगूं न तो ही तुम दंडवत् करना। नहीं तो तू मेरा पैर खिंचेगा! इसकी अपेक्षा उतावली मत कर। कठिन है। 'सकल तीरथ तेना मनमां रे।' जिस बुद्धपुरुष के शरीर में अडसठ तीरथ हो, ऐसा जिसका जीवन हो, तीर्थस्वरूप मानव हो ये वैश्विक वैष्णवों का लक्षण है। 'वणलोभी ने कपटरहित छे।' जे लोभरहित है, जिसमें संकीर्णता नहीं है। जिसस क्राइस्ट ने कहा था, जो देगा उसको पिता अधिक देगा और जो छुपायेगा उसका मेरे पिता जो होगा उसे छिन लेंगे। वो लोभरहित है। ये वैष्णव का लक्षण है कपटरहित।

जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया ।
तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ।।

कपटमुक्त है। छोड़ो! 'काम-क्रोध निवार्या रे'; बहुत कठिन। 'गीता' कठिन है। कठिन होगा। 'काम क्रोध निवार्या।' बहुत-से लोग ऐसा कहते हैं कि हम छह महिना हिमालय में थे। गुस्सा गायब! पर वहां तो करने जैसा कुछ होता नहीं है! हिमालय में जाकर तुम क्रोध न किये उसमें क्या है? हां, 'बाज़ार से निकला हूं, खरीदार नहीं।' बाज़ार से निकले हो और बाज़ार स्पर्श न करे। काम-क्रोध के बीच जीते हो और फिर भी 'असंग शस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।' इस तरह जो आदमी जी जाये। काम-क्रोध का निर्वाण करना वैश्विक वैष्णवों का लक्षण है। और 'भणे नरसैंयो तेनुं दर्शन करतां कुळ एकोतेर तार्या रे।' ऐसे किसी वैष्णव का दर्शन हो तो उसके दर्शन से एकहत्तर कुल तर जाये।

धन्य आजनी घडी ते रळियामणी,
मारो वहालोजी आव्यानी वधामणी।

और 'आजनी घडी', नरसिंह मेहता का प्रसिद्ध पद। 'आजनी घडी रळियामणी' का मोरारिबापू को इतना ही अर्थ सूझा है कि जो आज में जीता है वही धन्य है। जिस कल में मैं ऐसा जीया था उसकी बातें करके रुदन होता है अथवा तो आपकी वाह-वाह करता है वो धन्य नहीं है। और मैं भविष्य में ऐसे रहूंगा ऐसी अपेक्षा रखे वो नहीं। धन्य वो है, जो बीजली की चमक में मोती पिरो ले। इसीलिए नरसिंह कहते हैं, 'धन्य आजनी घडी।' आज का ये पल, ये क्षण, वर्तमान यही रमणीय है। इसमें ही प्रियवर आते हैं। अतीत अनुसंधान जिसका नहीं मिटता उसका प्रियवर नहीं मिलता।

अब जन्माष्टमी परसों है। हम सब पंजीरी बांटनेवाले आदमी हैं। पंजीरी महाराज ने घर से नहीं किया होगा! पूरा गांव लाया होगा उसमें से बनाया होगा। महाराज का काम इतना है कि बांट दे। मैंने जन्माष्टमी की और शिक्षकदिन की दो दिन पहले की संध्या पर ये पंजीरी बांटने का काम किया है। शिक्षकदिन को समेट लूं न साहब? पांचवी सितम्बर राधाकृष्ण का स्मरण किये बिना एक शिक्षक कैसे रह सकता है साहब! शिक्षक दिन को याद करता हूं। उसी दिन जन्माष्टमी है। ऐसी सुन्दर संध्या को आज नरसिंह मेहता के लिए मुझे गाने का समय आया, बोलने को मिला। मैं बहुत आनंद का अनुभव करता हूं। आप सभी प्रेम से सुने। और अंत में चार पंक्ति है साहब -

घीर आई है शाम, चलो मयकदे चलें।

सांज हो गई, चलें, प्रसंग हो गया। मयकदे अर्थात्? ये जैसे-तैसे शराबखाने की बात नहीं है। विनुभाई तो मजाक करते हैं। घायलसाहब खूब मस्ती में थे और उसमें विनुभाई मेरे रूबरू उन्हें कहे कि घायलसाहब, ये मोरारिबापू इनके हाथ से सम्मान होना है, नरसिंह मेहता एवोर्ड। 'कौन मोरारिबापू?' सीधे काट डाला मुझे! 'कौन मोरारिबापू' 'कौन?' मतलब विनुभाई ने अपना जोड़ा था! घायलसाहब ने मुझसे कहा कि बापू, ये विनु को कहो न, आपके समक्ष तो मेरी इज्ज़त रहने दे कम से कम! मैं कहीं ऐसे बोल सकता हूं? वो घायलसाहब कहते कि वो पीते थे। पर मुझे एक जिज्ञासा करनी है आपसे अंत में। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा', 'अथातो भक्ति जिज्ञासा', 'अथातो धर्मजिज्ञासा।' वैसी ही मेरी एक जिज्ञासा है 'अथातो मद्यजिज्ञासा।' जो आदमी शराब पीता तब उसमें क्या-क्या करता? इसलिए मैंने बाद में मैंने सुना कि उसमें सोडा डालते। बरफ का टुकड़ा डालते अथवा तो सोडा डालते। साहब! मुझे कहने दीजिए, घायल शायरी पीता था। वो शराब तो सोडा के स्वरूप में डालता था साहब! बाकी जो शायर होगा वो तो कविता को पीता होगा। वही उसका नशा है। उस शराब का नशा तो वापस ऊतर जायेगा! शायरी का नशा नहीं ऊतरता है।

घीर आई है शाम, चलो मयकदे चलें।
याद आ रहे हैं जाम, चलो मयकदे चले।
साकी है, शराब है, आज़ादियां भी है।
है सबकुछ इन्तज़ाम चलो मयकदे चलें।

(अरविंदराय केशवलाल वैष्णव चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा 'घूमता-फिरता गिरनार नरसिंह मेहता' विषय पर वडोदरा (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : ता. ३-९-२०१५)

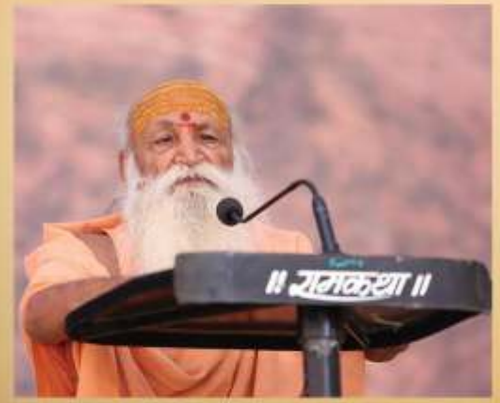

गरवाने माथे

रूखड़ बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो,
जेम झळुंबे मोरली माथे नाग जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

जेम झळुंबे कूवाने माथे कोस जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो,
जेम झळुंबे बेटाने माथे बाप जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

जेम झळुंबे नरने माथे नार जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो,
जेम झळुंबे गोपीने माथे कान जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

जेम झळुंबे धरतीने माथे आभ जो,
गरवाने माथे रे रूखड़ियो झळुंबियो।

॥ जय सीयाराम ॥